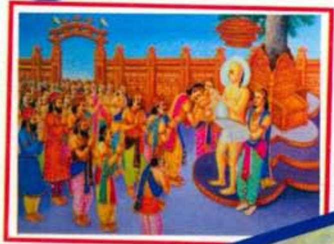

सोलह महासती कथानक तृतीय खण्ड

समय के अमिट हस्ताक्षर

मुनि मनितप्रभसागर

सोलह महासती कथानक तृतीय खण्ड

समय के अमिट हस्ताक्षर

मुनि मनितप्रभसागर

जहाज मंदिर प्रकाशन पुष्प
156

नारी जाति के गौरवशाली पृष्ठ

पावन सानिध्य

खरतरगच्छाधिपति आचार्य श्री जिनमणिप्रभसूरीश्वरजी म. सा.

लेखन

मुनि मनितप्रभसागर

सम्पादन

साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थल
श्री जिनकांतिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट
जहाज मंदिर
माण्डवला - 343042 , जिला - जालोर (राज)
फोन - 02973 - 256107, 9649640451
ईमेल - jahaj_mandir@yahoo.co.in

प्राप्ति स्थल
श्री जिनहरि विहार धर्मशाला
तलेटी रोड़, पालीताणा - 364270
फोन: 02848-252653, 9427063069
ईमेल - jinharivihar@gmail.com

प्रथमावृत्ति - 1000 (2013)
द्वितीयावृत्ति - 1000 (2017)
मुद्रण मूल्य - 100 रूपये
विक्रय मूल्य - 50 रूपये (श्रुत सेवार्थ)

समर्पण

शील की प्रभा से अनुप्राणित है जिनका जीवन...

संयम की विभा से आप्लावित है जिनका दर्शन...

सत्य की आभा से आलोकित है जिनका वर्तन...

नारी जगत का वैभव

शीलवती वैराग्यवती भगवती

उन सोलह महासतियों को

समय के अमिट हस्ताक्षर का सादर सविनय समर्पण

मुनि मनितप्रभसागर

The Most Selfish letter 'I' Avoid it.

The Most Satisfactory 2 letters 'We' Use it

The Most Poisonous 3 letters 'Ego' Kill it.

The Most Luckily 4 letters 'Love' Give it.

The Most Pleasing 5 letters 'Smile' Keep it.

Fastest Spreading 6 letters 'Romours' Ignore it.

Hardworking 7 letters 'Success' Achieve it.

The Most Enviable 8 letters 'Jealousy' Distonce it.

The Most Essential 9 letters 'Principle' Have it.

The Most Divine 10 letters 'Friendship' Maintain it.

कृपया

- पुस्तक को झूठे मुँह न पढे। • पुस्तक को रद्दी में न बेचें। • पुस्तक की आशातना न करें।
- पुस्तक को जमीन पर न रखें। • पुस्तक को झूठे हाथ न लगावें। • पुस्तक के प्रति श्रद्धाशील बने रहे।

श्रुत सहभागी

पूज्य मुनि **श्री मनितप्रभसागरजी म.सा.**

द्वारा आलेखित

'श्री गुरू गौतम समरिये''

के विमोचन कर्त्ता

एक गौतम गुरुभक्त परिवार

एक लालबत्ती

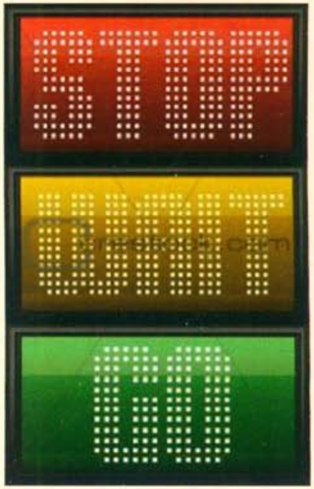

यह पुस्तक एक लालबत्ती है,

जो रुकने का निर्देश दे

रही है ।

दैहिक सुख, रुपया – पैसा

और भौतिकता की ओर

भाग रही नारी क्यों अपने जीवन को

चौपट कर रही है ?

इस प्रकाशन का पढें, समझें और

जीवन को बदलें।

इसी में नारी की गौरवपूर्ण

अस्मिता का संरक्षण है।

अनुक्रमणिका

मंगलम् 08

प्रशंसनम् 09

ये गौरवशाली पृष्ठ 13

1. महासती ब्राह्मी 19

2. महासती सुन्दरी 31

3. महासती राजीमती 55

4. महासती पद्मावती 65

5. महासती द्रौपदी 87

6. महासती कौशल्या 121

7. महासती पुष्पचूला 141

मंगलम्

सिद्धों को छोडकर सभी का जीवन अपने आप में अधूरा है। वे धन्यभागी हैं, जिन्हें अपने अधूरेपन का बोध हो जाता है। सच तो यह है कि अपने अधूरेपन का बोध होना और पूर्ण होने के लिये प्रयास करना ही सम्यक्त्व की प्राप्ति है।

उन महापुरूषों का जीवन हमारे लिये परम आदर्श हैं, जिन्होंने अपने विशिष्ट आचरण व साधना के द्वारा अपने अन्तर के पूर्णत्व को पा लिया या प्राप्ति के निकट पहुँच गये।

प्रिय मुनि मनितप्रभ की इस नई पुस्तक में उन सोलह महासतियों की कथाऐं हैं, जिन्होंने इन्हीं गुणों के पारगामी होकर पूर्णत्व पाया या पूर्णत्व प्राप्त करने का वरदान पा लिया।

ये कथाऐं केवल कथाऐं नहीं हैं, अपितु जीवन का एक आदर्श है। मन का सुख और शरीर की अमीरी उनके लिये तुच्छ थी, उन्हें प्रेम था तो अपनी आत्मा से, अपनी दृढ़ता से, अपने शील से! सच में आराधना, साधना, संयम, त्याग, समता, सहनशीलता, दृढ़ता, शील... ये वे गुण हैं, जिनसे आराधक निश्चित ही मंजिल को पा लेते हैं।

ये कथाऐं समझौते की कहानियाँ नहीं हैं, ये कथाऐं न्यौछावर हो जाने की कथाऐं हैं। उन्होंने शील पर अपना जीवन न्यौछावर कर दिया... अपने सारे सुख न्यौछावर कर दिये ! शान्त चित्त से इन्हें पढना है और अपनी आत्म जागृति के साथ इन्हें जोडते हुए अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर लेना है, इसी में पुरूषार्थ की सार्थकता है।

मुनि मनितप्रभ को संयम ग्रहण किये बहुत लम्बा समय नहीं बीता है, पर उसकी संयम-रमणता, संयम-परिपक्वता अपने आपमें अनुमोदनीय आदर्श है। लगातार चलते उसके स्वाध्याय-प्रवाह का ही यह परिणाम है कि वह निरन्तर आदर्श और प्रेरक ग्रन्थों का सर्जन कर रहा है। उसके द्वारा आलेखित जैन जीवन शैली हजारों हजारों लोगों द्वारा प्रशंसित हुई, यह अपने आप में गौरव की बात है।

मेरी कामना है कि उसके द्वारा इसी प्रकार सर्जन श्रृंखला निरन्तर प्रवहमान रहेगी।

जहाज मंदिर, 12 मार्च 2013

आचार्य जिन मणिप्रभसूरि

प्रशंसनम्

नारी सृष्टि का अनुपम सौंदर्य एवं जीवन का अनूठा माधुर्य है। नारी सृजन-चेतना की प्रतीक है। यद्यपि सृष्टि के निर्माण में पुरूष और नारी, ये दो मौलिक तत्त्व निहित हैं तथापि विश्व संरचना में आधारभूत तत्त्व नारी ही है। सृजनशीलता का यह विशिष्ट वरदान उसे जन्मजात प्राप्त है। पुत्री के रूप में निर्दोष अठखेलियाँ करते हुए माता-पिता के जीवन को सरस बनाना, बहिन के रूप में अपनत्व और स्नेह की सुवास बिखेरना, पत्नी के रूप में समर्पण और शील की उजास भरना, माता के रूप में वात्सल्य और ममता की मीठास भरना, बहु के रूप में सेवा-सहिष्णुता की उष्मा देना, दादी के रूप में संपूर्ण परिवार को परस्पर प्रेम, सामंजस्य, सौहार्द्र और एकता के सूत्र में बांधकर सुसंस्कारों का सिंचन करना, ये सब भारतीय नारी की विविध भूमिकाएँ हैं। इन सब भूमिकाओं को चीवट एवं जीवटपूर्वक निभाना नारी की दीर्घ दृष्टि, धृति और अनुभवपरक शक्ति का सशक्त प्रमाण है।

नारी का सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक गौरवमय पद है - 'मातृपद'। माँ के रूप में वह महान् ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और साहित्यकारों की ही जन्मदात्री नहीं है अपितु संसार की तीर्थंकर जैसी सर्वोत्कृष्ट कृति के निर्माण का गुरूतर गौरव भी नारी को ही प्राप्त है। कोई महान् माता ही किसी महापुरूष को जन्म देकर अपने मातृत्व को महिमामंडित कर सकती है। एक महापुरूष को अपने गर्भ में धारण करने से पूर्व माँ को बहुत तपना और खपना पडता है। एक शिशु को जन्म देकर वह जन्मदात्री कहलाती है परंतु जीवन निर्मात्री तो तब कहलाती है, जब किसी महान् व्यक्तित्व के निर्माण में आधार स्तम्भ बनती है।

सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाली धरती को हम 'माता' के पद से अभिषिक्त करते हैं। धरती माता न केवल निर्मात्री कहलाती है अपितु जीवनदात्री एवं संरक्षणदात्री भी कहलाती है। वह अपने कण-कण से अन्न पैदा करती है, संरक्षण देती है, विस्तार देती है और सबके लिए उसका विसर्जन करके समर्पण और त्याग की खुश्बू बिखेरती है।

माता की भी यही भूमिका है। वह अपनी संतान को न केवल जन्म देती है अपितु शिक्षित-प्रशिक्षित करती हुई समाज एवं देश की सेवा में हँसते-हँसते समर्पित कर देती है। व्यक्तित्व निर्माण की इस महनीय भूमिका में त्रासदी, कष्ट और बाधाओं को झेलकर भी वह न हताश होती है, न निराश होती है। न कोई गिला शिकवा करती है, न आँसू बहाती है। तर्जना और वर्जना में भी वह अपने सुख का स्रोत

तलाश लेती है। उस सुख की तुलना में संसार की शोहरत और दौलत भी उसे तुच्छ और नगण्य प्रतीत होती है।

निश्चित ही माँ की ममता और समता का कोई सानी नहीं हो सकता। वह सच्चे अर्थों में निर्मात्री बनकर नवसृजन के नये स्वस्तिक उकेरती है। कभी पुत्र के रूप में वह धर्मवीर, त्यागवीर, दानवीर, शूरवीर, महावीर का निर्माण करती है तो कभी पुत्री के रूप में जगन्माता त्रिशला, महासती कौशल्या, सीता, चंदनबाला और पाहिनी का।

नारी विश्व की महान् संपदा है तो अपरिमेय शक्ति भी है। इसमें निर्माण की अनोखी कला है तो विनाश की शक्ति भी निहित है। अपनी संतान के लालन-पालन में वह जितनी ममतामयी और वात्सल्यमयी है, सामाजिक बुराईयों के प्रतिकार एवं दानवता के दलन में दुर्गा और चण्डी का रूप भी धारण कर सकती है। उसका हृदय फूल सा कोमल होने पर भी समय आने पर वह तलवार और भाले को उठाकर झांसी की रानी का शौर्य और पराक्रम भी दिखा सकती है।

विद्या, धन और शक्ति, ये तीनों जीवन विकास के मूलभूत तत्त्व हैं। इनकी प्रतीक देवियाँ नारी-जाति का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। विद्या की अधिष्ठात्री माँ शारदा, धन की अधिष्ठात्री माँ लक्ष्मी, शक्ति की अधिष्ठात्री माँ दुर्गा के रूप में नारी शक्ति ही प्रतिष्ठित एवं पूजित है। विश्व की प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक परम्पराओं में नारी शक्ति की पूजा-अर्चना किसी न किसी रूप में होती ही रही है। वैदिक परम्परा में दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वैष्णवी, नारायणी तो जैन धर्म में श्रुतदेवी व शासनदेवियों के रूप में अर्चित और आराधित हैं।

प्राचीन वैदिक परंपरा में याज्ञवल्क्य, अगस्त्य, वशिष्ठ आदि प्रज्ञाशील मंत्र द्रष्टा ऋषियों की भाँति सूर्या, सावित्री, लोपामुद्रा, घोषा आदि परम विदुषी मंत्रद्रष्टा ऋषिकाएें भी हुई हैं। उपनिषद् की गार्गी, रामायण की अनुसूया, महाभारत की सुलम्भा की जागृत अंत: प्रज्ञा पर संपूर्ण नारी जगत् को गौरव है। वैदिक परंपरा की भाँति जैन परंपरा भी विदुषी प्रतिभाशाली नारियों से समृद्ध रही है। युग निर्माता भगवान ऋषभ ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पुत्र-पुत्रियों में कोई भेद नहीं किया। उन्होंने लिपि की सर्वप्रथम शिक्षा ब्राह्मी को एवं गणित की शिक्षा सुन्दरी को दी। महावीर युग की श्राविका जयंती प्रखर दार्शनिक और तत्व ज्ञानप्रवीणा थी। उसके द्वारा की गयी जिज्ञासाओं का समाधान स्वयं भगवान महावीर ने किया था। नंदराज के प्रधानमंत्री शकडाल की सात पुत्रियाँ और स्थूलिभद्र की बहिने इतनी मेधावी थी

कि वे किसी भी अपठित, अश्रुत काव्य, ग्रंथ को क्रमश: एक से सात बार सुनकर अस्खलित रूप से दुहरा देती थी।

प्रकाण्ड पंडित आचार्य हरिभद्रसूरि को प्रतिबोध देने वाली भी याकिनी महत्तरा थी। हरिभद्रसूरि ने अपने प्रत्येक ग्रंथ में उनका उल्लेख गौरव एवं श्रद्धा के साथ किया है।

उपरोक्त संदर्भों से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में बौद्धिक विकास और शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीय नारी ने अपनी भरपूर क्षमता का परिचय दिया था। 20वीं सदी से आज तक सामाजिक, राष्ट्रीय, औद्योगिक, प्रशासनिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक, तकनीकी, प्रत्येक क्षेत्र में नारी ने आश्चर्यकारी कीर्तिमान स्थापित किये हैं। आधुनिक नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के साथ कदम से कदम और कंधे से कंधा मिलाकर जो काम कर रही है, उसकी प्रतिभा और क्षमता का लोहा पूरी दुनिया मान रही है। रूढियों, अर्थहीन परम्पराओं, मानसिक संकीर्णताओं के चक्रव्यूह को भेद कर उच्चतम पदों को हासिल करके उसने अपने अप्रतिम पौरूष, साहस और योग्यता का बखूबी परिचय दिया है।

वर्तमान समाज के दर्पण में नारी के दो रूप प्रतिबिंबित हो रहे हैं - प्रथम रूप है मर्यादा और परंपरा के सांचे में ढला आदर्श रूप। शिक्षित या अशिक्षित परंतु शालीन वेशभूषा से युक्त, बडे बुजूर्गों के प्रति विनत, सेवा-सहकार की जीवंत प्रतिमा, अनुशासित, मर्यादित, परिवार के प्रति पूर्ण समर्पित, यह एक सुघड गृहणी - भारतीय नारी का आदर्श रूप है तो साथ ही एक दूसरा चित्र भी उभर रहा है - उच्च डिग्रियाँ, मोबाईल, कम्प्यूटर, इंटरनेट, जीन्स, मिनी स्कर्ट्स की संस्कृति, जिसने उसे विकृति के गर्त्त में धकेल दिया है। आज की आधुनिक शिक्षित और प्रबुद्ध नारी पश्चिमी अंधानुकरण में अपनी लोक-लज्जा, मर्यादा, विवेक एवं संस्कारों को ताक पर रखकर दिन-प्रतिदिन उच्छृंखल एवं उद्दण्ड होती जा रही है। को-एजुकेशन, बॉयफ्रेंड, पिक्चर, किटी पार्टी, क्लब, होटल की संस्कृति ने नारी की प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा को धूमिल करके उसे नारा बना दिया है। राजनीति के गलियारों में गोते लगाती हुई नारी घर-परिवार के प्रति अपने दायित्व से सर्वथा विमुख हो रही है।

आवश्यकता है वह अपने आदर्श और गौरवभरे अतीत के रोशनदान को खोलकर अपना गरिमामय स्वरूप निहारें। अतीत में जंगलों की खाक छानना, दर-दर भटकना, दासत्व का जीवन जीना उसे मंजूर था परंतु अपने शील और सदाचार का सौदा किसी भी किंमत पर

मंजूर न था। जिन्होंने अपनी अस्मिता की बलि वेदी पर हँसते-हँसते प्राणों को न्यौछावर कर दिया, वे ही दीपशिखाएँ महासतियों के रूप में इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ बन वर्तमान की प्रेरणा बनी हुई है। वैसे तो प्रत्येक युग सतीत्व के उजाले से आलोकित होता रहा है परंतु भगवान ऋषभ से लेकर महावीर पर्यंत उज्ज्वल व्यक्तित्त्व से परिपूर्ण ऐसी सोलह महासतियाँ हुई हैं, जिनका जीवन संपूर्ण नारी समाज के लिए प्रेरणा का आलोक बिखेर रहा है।

प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णित सोलह सतियों का जीवन अत्यंत उदात्त, भव्य एवं दिव्य है। महासती सीता, जो राज सुखों में पली-बढी परंतु पलभर में वनवास का कठोर जीवन हँसते-हँसते स्वीकार कर लिया। महासती सुभद्रा ने कच्चे धागे से बंधी छलनी द्वारा कुएँ से पानी निकाला और चम्पा द्वार पर उसका छिडकाव करते हुए न केवल द्वारोद्‌घाटन किया अपितु कुशंका और संदेह से दुर्गंधित वातावरण को अपनी शील की खुश्बू से सुवासित कर दिया। चन्दनबाला, द्रौपदी, दमयंती आदि सभी महासतियाँ अपने आप में एक-एक इतिहास का उज्ज्वल पृष्ठ है, जिन्हें पढकर नारी जगत का ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति का सर सहजत: नत हो जाता है।

सोलह महासतियों के सम्पूर्ण कथानक को अपने शब्दों की माला में पिरोया है मेरे प्रिय अनुज प्रज्ञावान् अप्रमत्त साधक मुनि श्री **मनितप्रभसागरजी म.सा.** ने। तीन खण्डों मे विभक्त महासतियों का जीवन दर्शन यद्यपि बहुत ही अनूठा और उजला है तथापि मुनिश्री की सधी हुई, मंजी हुई लेखनी का स्पर्श पाकर और अधिक कांतिमान बन गया है। उनकी प्रवाहपूर्ण लेखनी में चमत्कारिक सरसता एवं कमनीयता है, जो पाठक के हृदय को सहज ही मोह लेती है। उनकी स्वाध्याय एवं लेखन यात्रा अनेक पडाव तय करती हुई आज महासती कथानक-लेखन के मुकाम पर पहुँची है। इन क्षणों मे मेरा हृदय गौरव मिश्रित प्रसन्नता से गद्‌गद् है। अनुज मुनि के साधकीय जीवन के प्रति मेरी असीम शुभकामनाएँ समर्पित हैं। मुनि मनितप्रभजी साहित्य यात्रा के नित नये सोपान तय करते हुए जिनशासन की प्रभावना करें।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ ......

साध्वी नीलांजनाश्री

साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री

ये गौरवशाली पृष्ठ

जैन संस्कृति में सत्य और शील की एक अक्षुण्ण एवं समृद्ध परम्परा रही है । इस संस्कृति की अपनी एक अलग पहचान है, धर्म के संस्कारों से अनुप्राणित जीवन शैली है और गौरवपूर्ण विरासत भी है।

पुरूष और स्त्री जीवन रूपी रथ के दो अनिवार्य चक्र (पहिये) हैं । यदि एक चक्र क्षतिग्रस्त हो जाये तो रथ प्रगति की ओर गति नहीं कर सकता। किसी भी पक्षी को आकाश की अमाप ऊँचाइयों का स्पर्श करने के लिये दो पंखों की जरूरत होती है।

पुरूष और स्त्री, दोनों परस्परपूरक हैं, अन्योन्य आश्रित हैं। वे एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनते हैं तो पारस्परिक गौरव का निर्वहन भी करते हैं।

नारी का बचपन पिता की छाँव में बीतता है, युवानी पति के सहारे गुजरती है और बुढ़ापा पुत्र की कृतज्ञता तले संवरता है। इस प्रकार पुरूष स्त्री के सम्पूर्ण जीवन का आधार स्तंभ बनता है तो इसका दूसरा पहलू यह भी है कि हर पुरूष के विकास में स्त्री का अपरिहार्य स्थान है। वह माँ, पत्नी, बहिन, पुत्री आदि भूमिकाओं को सम्यग्रूप से निभाती हुई पुरूष को सर्वश्रेष्ठ सत्ता भी उपलब्ध करवाती है।

नारी कभी मरूदेवा से लगाकर त्रिशला पर्यन्त माँ के रूप में तीर्थंकरों को जन्म देती है, मदनरेखा, प्रभावती, मृगावती के रूप में पति को धर्म का बोध देकर उनका जीवन संवारती है तो कभी ब्राह्मी, सुन्दरी, यक्षा के रूप में भाई को प्रतिबोध देकर अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य निभाती है, इतना ही नहीं, वह अपनी ममता को विस्तृत आकाश देकर पुत्रों को शासन की झोली में सौंपकर आर्यरक्षितसूरि, दादा जिनदत्तसूरि, हेमचन्द्राचार्य, मणिधारी जिनचंद्रसूरि आदि के रूप में रत्न भी प्रदान करती है।

नारी न तो भोग विलास का साधन है, न अबला और दासी है। वह वात्सल्य की प्रतिमा, संकल्प की देवी और प्रकृति की पावन मंदाकिनी है।

किसी भी देश, समाज या धर्म के निर्माण और विकास में नारी एक महत्त्वपूर्ण घटक है। उसका अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है। महात्मा गांधी कहा करते थे कि 'माँ ' बालक का पहला गुरु और गुरुकुल है। जो बालक विद्यालय में अनेक

वर्षों में सीखता है, वह माँ की कोंख में पलते-पलते, गोद में खेलते-खेलते और मुस्कान को झेलते-झेलते कुछ वर्षों में ही सीख जाता है।

नारी केवल नारी नहीं है, वह सृष्टि का सौन्दर्य, संस्कारों की सुवास और संस्कृति का संगीत है। शास्त्रकारों ने पुरूष और स्त्री के सात-सात प्रकृति प्रदत्त गुण बताये हैं जिनमें पुरूष को कठोरता का प्रतीक और स्त्री को कोमलता की प्रतिमा कहा है।

पुरूष ने भले ही स्त्री का भरपूर शोषण किया, उसके अधिकारों को छीना, प्रताड़नाएँ दी पर वास्तविकता तो यही है कि स्त्री किसी भी दृष्टि से हेय, तुच्छ, हीन और दीन नहीं है। उसने सदा से पुरूष वर्ग पर उपकार ही किया है।

नारी पुरूष के पाषाण-हृदय, स्वच्छन्द मनोवृत्ति और मानसिक उद्दण्डता को अपने संयत, सौम्य और सहनशील व्यवहार के द्वारा प्रभावित ही नहीं करती अपितु रूपान्तरित भी करती है। अपने स्नेहिल साहचर्य से उसके कठोर स्वभाव को मधुर बनाती है, सेवा, त्याग और शील के माध्यम से उसकी पाशविक जीवन शैली को दैविक शक्तियों में बदलती है। सचमुच स्त्री देवी रूपा है, जो शील और संस्कारों की सुरक्षा में स्वर्गीय संपदा को भी तिनके की भाँति ठुकरा देती है।

प्रस्तुत प्रकाशन नारी के शील से सुवासित, अर्हतों द्वारा प्रशंसित और नरेन्द्रों-देवेन्द्रों द्वारा अर्चित अद्वितीय गरिमापूर्ण दस्तावेज है। जैन धर्म, दर्शन और जीवन अन्य परम्पराओं, धर्मों और सिद्धान्तों से सर्वथा विलक्षण एवं अनूठा है। यहाँ स्त्री को पुरूष के समान अधिकार दिये गये हैं, वह चाहे तो विवाह करके गृहस्थ धर्म निभाएँ, और चाहे तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धाारण करके मुनि-पथ का चयन करे।

अनादिकाल से प्रवर्तमान इस जैन संघ में हर तीर्थंकर के शासनकाल में हजारों-लाखों की संख्या में श्रमणियाँ एवं श्राविकाएँ हुई हैं। परमात्मा ऋषभ से लगाकर आज तक सतियों-महासतियों की लम्बी परम्परा रही है। अनेक श्रमणियाँ शील के बल पर मुक्ति की ओर अग्रसर हुई तो बड़ी संख्या में सुलसा, रेवती, जयन्ती, मंदोदरी के नाम से सुश्राविका के रूप में प्रसिद्ध हुई।

जैन धर्म में दो प्रकार की सतियाँ हुई हैं। प्रथम स्थान पर वे हैं, जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया, और दूसरे स्थान पर वे हैं, जो विपत्ति और मृत्यु भय के क्षणों में भी एक पतिव्रत से चलायमान नहीं हुई।

यद्यपि ब्रह्मचर्य व्रत पालने वाले विजय सेठ, सुदर्शन सेठ, पेथड़ शाह आदि अनेक श्रावक हुए पर उन्हें महासती की तरह किसी भी प्रकार का विशेष अलंकरण नहीं दिया गया। इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों के शासन में शील-सदाचार, त्याग-विराग, धैर्य व सौन्दर्य की स्वामिनी सोलह महाविभूतियाँ हुई जो इतिहास का गौरवशाली अमिट शिलालेख बन गयी।

अब प्रश्न यह है कि सतियाँ सोलह ही क्यों?

यद्यपि गद्य-पद्य रचनाकारों ने सतियों की अलग अलग संख्या बतायी हैं और उनका नामोल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। सतरहवीं सदी में रचित रचनाओं में विशेषत: चौबीस सतियों के नाम ही मिलते हैं। किसी ने स्वरचित ढाल में एक सौ आठ सतियों के नाम लिखे हैं तो किसी ने चौसठ नामों का उल्लेख किया है। वास्तविकता तो यह है कि आज तक हजारों सतियाँ हो चुकी परन्तु साहित्यकारों को जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगी या जिनका पुण्योदय प्रबल था अथवा जिनका पवित्र चरित्र अधिकतम प्रेरणास्पद लगा, वे सोलह सतियाँ विशेषत: जनप्रिय-जगप्रसिद्ध हो गयी।

आज का लोकमानस सोलह सतियों से अधिक प्रभावित है। नीचे जो छन्द दिया जा रहा है, उसे अनेक लोग अपनी प्रभात-प्रार्थना में शामिल करते हैं-

ब्राह्मी चंदनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी ।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा ॥
कुन्ती शीलवती नलस्यदयिता, चूला प्रभावत्यपि ।
पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥

इन सोलह सतियों में से ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला आदि जैन समाज में ही मान्य हैं तो दमयन्ती, कौशल्या, सीता, कुन्ती, द्रौपदी आदि को जैनेतर समाज में भी श्रद्धास्पद स्थान प्राप्त है। कुछ बाल ब्रह्मचारिणी हैं तो कछ गृहस्थ धर्म को निभाती हुई एक पतिव्रता है। सुभद्रा, सीता, द्रौपदी, शिवा आदि के जीवन में शील परीक्षा के कठिन क्षण भी उपस्थित हुए तो कुछ का जीवन सामान्य है। कुछ स्वर्गगामिनी हुई तो कुछ मोक्ष पधारी। कुछ का पूर्वभव वृत्तान्त उपलब्ध है तो कुछ का नहीं।

इन सोलह सतियों में से अधिकांश पारिवारिक पृष्ठ भूमि से भी परस्पर जुड़ी हुई हैं । ब्राह्मा-सुन्दरी और प्रभावती-पद्मावती-मृगावती-शिवा, ये सगी बहिने थी तो मृगावती और चन्दनबाला में मौसी-भाणजी का रिश्ता था । इससे भी अधिक कौशाल्या-सीता व कुन्ती-द्रौपदी में सासु-बहु का सम्बन्ध था ।

सोलह सतियों में से ब्राह्मी और सुन्दरी आदिनाथ प्रभु के शासन में एवं दमयन्ती धर्मनाथ प्रभु के शासन में हुई। कौशल्या व सीता मुनिसुव्रत स्वामी के एवं राजीमती, कुन्ती व द्रौपदी परमात्मा अरिष्टनेमि के शासनकाल में हुई। शेष आठ सतियाँ परमात्मा महावीर के शासन में हुई, जिन्होंने अपनी संस्कार की सुवास से संपूर्ण धर्मसंघ को महकाया।

ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला, सुलसा, शिवा, पुष्पचूला, प्रभावती, पद्मावती का आवश्यक निर्युक्ति में, राजीमती का दशवैकालिक निर्युक्ति व उत्तराध्ययन सूत्र में, कुन्ती और द्रौपदी का ज्ञाताधर्मकथांग में, कौशल्या व सीता का त्रिषष्ठिशलाका पुरूष में, मृगावती का आवश्यक निर्युक्ति व दशवैकालिक निर्युक्ति में, सुभद्रा का दशवैकालिक निर्युक्ति में जीवन वृत्तान्त उपलब्ध होता है।

ग्रन्थकारों ने ही नहीं, अनेक कवियों ने भी महासतियों पर कलम चलाकर अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्ति दी है। संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी, मारवाड़ी आदि भाषाओं में अनेक ग्रन्थ निर्मित हुए, जैसे उपदेशमाला, पुष्पमाला, धर्मोपदेश माला, शीलोपदेश माला, दान-शील-तप-भावना कुलक आदि।

एक-एक सती पर अलग-अलग कवियों ने चौपाई, रास, राज्झाय, स्तवन, गीत, ढाल, छंद रचे, जिनसे प्रेरणा लेकर अनेक व्यक्तियों ने अपनी जीवन शैली में संशोधन-परिमार्जन किया।

जैन-निर्माण, गोत्र निर्माण आदि शासन प्रभावक कार्यों की भाँति अभिनव साहित्य निर्माण में खरतरगच्छ का अनुपम स्थान रहा है । इस गच्छ के धुरन्धर प्रकाण्ड विद्वान् मुनिवृंद ने आगम, टीका, न्याय, ज्योतिष, अलंकरण, छन्द, व्याकरण, प्रकरण, नीति, वैद्यक, नाट्य, कर्म, सिद्धान्त, योग, ध्यान, आयुर्वेद, मंत्र, कथा, कोष, दर्शन आदि विषयों पर जिस प्रकार अपनी अजस्र लेखिनी का प्रयोग किया, वैसे ही इन सोलह महासतियों पर भी कलम चलाकर अपनी श्रद्धा एवं उनकी महत्ता को अभिव्यक्ति दी।

16वीं-17वीं-18वीं शताब्दी में हुए आचार्य जिनचन्द्रसूरि, जिनराजसूरि, जिनसमुद्रसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनगुणप्रभसूरि,

जिनरंगसूरि, उपाध्याय समयसुन्दर, उपाध्याय कनककीर्ति, उपाध्याय हेमनन्दन, उपाध्याय रघुपति, उपाध्याय विद्याकीर्ति, उपाध्याय धर्मवर्द्धन, जिनहर्षगणि, विनयमेरुगणि, चन्द्रकीर्तिगण, वाचक अमरसिंधु, आसिगु, केशवदास आदि ने शील की सुवास से ओतप्रोत सोलह सतियों पर ग्रंथ, चौपाई, रास, बारहमासा, गीत, धमाल, पद, ढाल, द्रुपद, सज्झाय, स्तवन, स्वाध्याय, काव्य, छंद आदि निर्माण करके अपनी लेखन क्षमता को धन्य बनाया।

इसी कड़ी में खरतरगच्छ विभूषण महामहोपाध्याय श्री समयसुन्दर ने द्रौपदी संहरण चारित्र ग्रंथ एवं गुणविनयोपाध्याय ने नलदमयन्ती कथा चम्पू टीका के द्वारा अपनी आस्था को मधुर स्वर दिये। लेखकों की इस सुदीर्घ नामावली के उज्ज्वल आलोक में यह अत्यन्त स्पष्ट है कि सोलह सतियों का चारित्र पवित्रता से मण्डित रहा है ।

इस सोलह महासती के उपयोगी कथानक को कलेवर विस्तार के कारण तीन खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है । प्रथम खण्ड, जिसका नाम है-**सत्य का अमिट सौन्दर्य**, उसमें चंदनबाला, मृगावती, प्रभावती, कुन्ती, दमयन्ती और सुलसा,के प्रेरणास्पद जीवन-वृत्त का शब्दांकन है । **'शील के अमिट शिलालेख'** नामक द्वितीय खण्ड में सीता, सुभद्रा और शिवा के गौरव-वैभव का प्रस्तुतीकरण है । तृतीय खण्ड, जो **'समय के अमिट हस्ताक्षर'** ब्राह्मी, सुन्दरी, राजीमति, पद्मावती, कौशल्या, द्रौपदी, पुष्पचूला के नाम से प्रकाशित हो रहा है-उसमें की गरिमामयी यशोगाथा का विश्लेषण है।

यद्यपि सोलह की संख्या रूढ-सी हो गयी है पर इनके अतिरिक्त चेलना, ऋषिदत्ता, अंजना, नर्मदा सुन्दरी, मलयासुंदरी, मयणासुंदरी, मनोरमा, मदनरेखा, जयन्ती, रूक्मिणी, सत्यभामा, सुज्येष्ठा आदि का पावन जीवन भी अत्यन्त प्रेरणास्पद है। उनको लेकर एक ग्रन्थ का लेखन करना अपने आप में श्लाघनीय कार्य होगा।

यद्यपि मध्यकाल में मृत पति के साथ चिता में जीवित आहूति देने वाली नारियाँ भी सती के रूप में प्रसिद्ध हुई पर जैन शास्त्रकारों को इस प्रकार से सतीत्व या महासतीत्व को परिभाषित करना मान्य नहीं है।

यदि कोई प्रश्न करें कि हजारों-लाखों-करोड़ों वर्षों पहले हुई सन्नारियों का जीवन-शब्दांकन वर्तमान के संदर्भ में कितना प्रासंगिक है तो प्रत्युत्तर अत्यन्त स्पष्ट है। शील, चारित्र और संस्कारों की आभा से ओतप्रोत इस प्रकाशन की महत्ता आज के इस विकृत, विषम और दुषम काल में अधिक बढ़ गयी है, जब नारी पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करती हुई अपनी अनमोल जीवन संपदा को मामूली, मूल्यहीन और महत्त्वहीन पदार्थों की वेदी पर चढ़ा रही है। नारी को यह हमेशा याद

रखना चाहिये कि उसका अस्तित्व सौन्दर्य की अपेक्षा शील प्रधान है।

उसकी भलाई तो इसी में है कि वह कृत्रिम चकाचौंध से दिग्भ्रान्त न होकर अपनी मर्यादा को समझे एवं उस पथ पर बढ़ने का संकल्प करे, जिस पर चलकर हजारों नारियों ने अनुसरणीय पदचिह्न अंकित किये हैं।

लेखन की इन घड़ियों में मैं उन समस्त ग्रन्थों के प्रति नत-प्रणत हूँ, जिनसे मुझे लेखन-पाथेय प्राप्त हुआ।

पूज्य गुरुदेव गच्छाधिपति आचार्य श्री जिनमणिप्रभसूरिजी म. सा. के प्रति सादर विनयावनत हूँ, जिनकी प्रेरणा से ही प्रस्तुत आलेखन संभव हो सका। निश्चित ही उनका सानिध्य चिंतन और मनन का पथ प्रशस्त करता है।

मेरे लगभग हर लेखन का संपादन जिनके द्वारा संपन्न हुआ है, उन प्रज्ञासम्पन्ना साध्वी डॉ. नीलांजना श्रीजी म. को साधुवाद क्या दूँ? इस लेखन के संपादन में उनका श्रम, समय और प्रज्ञा, तीनों का सुन्दर सहयोग मिला है। उनके उज्ज्वल चारित्रमय जीवन की शुभकामनाएँ करता हूँ।

प्रस्तुत प्रकाशन की अपनी महत्ता है और यह महत्ता तब तक बनी रहेगी, जब तक नारी का अस्तित्व विद्यमान रहेगा। अशील का कोहरा जब-जब शील की स्वर्णिम किरणों को आवृत्त करने का खोखला पुरूषार्थ करेगा, तब-तब नारी जीवन के अनूठे हस्ताक्षर नया आलोक एवं नयी दिशा देंगे।

अज्ञतावश जिनाज्ञा विरूद्ध लेखन के प्रति सादर क्षमाप्रार्थी हूँ।

मणि चरण रज

मुनि मनितप्रभसागर

भैया ! मैं संसार में कोई सुख नहीं मानती। दुःख की महाग्नि में चारों तरफ जीव झुलस रहे हैं। जहाँ देखो, वहाँ स्वार्थ की गंदी नालियाँ बह रही हैं। राग और द्वेष के कारखानों की चिमनियों से केवल और केवल कषाय और मिथ्यात्व का धुआँ निकल रहा है। अतः मुझे ऐसे सुख की कोई भूख नहीं है।

वैराग्यवती

महासती ब्राह्मी

महासती ब्राह्मी

वैराग्य का संगीत

रोम रोम में हर्ष और उत्कर्ष की तरंगे पैदा कर दे, ऐसे गीत – संगीत की महफिल में भी ऋषभ कुमार का श्वेत – शुभ्र आभामण्डल उनकी अध्यवसाय विशुद्धि का संकेत दे रहा है।

धन्य – धन्य है निष्काम योगी ऋषभ को, जो बाहर में भी भीतर का जीवन जीते हैं ।

अवसर्पिणी का तीसरा आरा प्रवर्तमान था। काल प्रभाव से जैसे-जैसे कल्पवृक्ष घट रहे थे, वैसे-वैसे संग्रह की कलुषित प्रवृत्ति अधिकार जमाने लगी थी।

बढ़ता विवाद....आपसी कलह....अवसाद से घिरी चित्त की शान्ति !

युगलिक कुलकर नाभि के दरबार में पहुँचे और निवेदन किया-कुल दिवाकर! हमारी समस्याओं को समाहित कीजिये। जब हमारे कल्पतरु पर अन्य व्यक्तियों ने अधिकार जमा दिया है, तब हम क्या करें....कैसे जीवन-निर्वाह करें।

नाभि बोले–ऋषभकुमार के पास जाओ। वही तुम्हारा पथ–प्रदर्शक बनेगा।

ऋषभ यानि तीर्थंकर बनने वाली महाप्रज्ञा! तीन ज्ञानों की उजली किरण!

संग्रह–विग्रह, तनाव–टकराव को भला कहाँ स्थान था उस दिव्य अमृत–पुरूष की अलौकिक चिन्तन शैली के सम्मुख।

इन्द्र ने विनीता नगरी का निर्माण किया और राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए ऋषभकुमार।

दो पत्नियाँ....भरत, बाहुबली इत्यादि मेधा–प्रतिभा सम्पन्न सौ पुत्र....सौन्दर्य की जीवंत प्रतिमा रूप दो पुत्रियाँ....।

चारों तरफ भोग–उपभोग की लहर और उसमें निर्लिप्त निष्काम ऋषभ महाराज। तिरासी लाख पूर्व बीत चुके थे और वे समझ गये–यही वह मंगलमय सूर्योदय है, जब मुझे संसार से संयम के दिव्य उपवन में प्रविष्ट हो जाना है।

मुझे त्याग और विराग का श्रीगणेश करना है। भोगों का मार्ग दिखने में भले ही अत्यन्त सुन्दर....अति रमणीय है पर वह पतन का मार्ग है।

मैंने पुरूष की बहत्तर और स्त्री की चौसठ कलाएँ सिखायी पर वे सब व्यवहारिक थी। मैंने अपना कर्त्तव्य निभाया पर अब मुझे सर्वश्रेष्ठ आत्म–कला का संगीत छेड़ना है। यही तो वह अलौकिक विधा है, जो जीव को शिवत्व की आभा से आलोकित करती है।

सकल साम्राज्य को तृणवत् त्यागकर ऋषभ मुनि बन साधना की कंटकाकीर्ण राहों पर बढ़ चले।

हजार वर्षों की उग्र तपश्चर्या के बाद चारों घाती कर्मों का क्षय कर मुनि ऋषभ कैवल्य के आलोक से जगमगा उठे।

तीर्थ की स्थापना कर इस अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर कहलाये।

इधर सम्राट् भरत अपने सभागार में बैठे पार्श्ववर्ती राज्यों के राजाओं से मन्त्रणा कर रहे थे कि दूत ने प्रवेश किया।

प्रश्नसूचक दृष्टि डालते हुए भरत ने कहा-कहो, क्या समाचार है?

दूत ने कहा-राजन्! एक दिव्य खुशी की खबर लाया हूँ। महारानी ने आज शुभ मुहूर्त में पुत्र-रत्न को जन्म दिया है।

सुनकर पूरे राजमहल में आनंद का रंग छा गया। सम्राट् भरत गम्भीर होकर भी अपनी खुशी छिपा नहीं पा रहे थे कि चक्र रत्न के प्रकटीकरण का सन्देश मिला। अब तो खुशी द्विगुणित हो गयी।

एक सुखद संवाद

दूत शमक ने आयुधशाला में चक्र–रत्न प्रकटीकरण के समाचार दिये पर उससे भी अलौकिक और उत्तम समाचार दूत यमक ने दिये।

राजन्! मुनीन्द्र ऋषभ की साधना फलीभूत हो गयी। वे अनुत्तर ज्ञान को प्राप्त हो गये। सुनते ही भरत चक्री ने दूत को स्वर्ण मुद्राओं का उपहार प्रदान किया!

इतने में एक और अलौकिक संवाद प्राप्त हुआ-राजन्! मुनि ऋषभ की साधना फलीभूत हो गयी है। वे कैवल्य को उपलब्ध हुए हैं।

एक साथ तीन-तीन बधाईयाँ! दो बधाईयाँ लौकिक जगत् में श्रेष्ठ भले ही हो पर अलौकिक लोक में नहीं। अलौकिक लोक में जो सर्वोत्तम और अनुपमेय है, वह है-अनुत्तर ज्ञान की सम्प्राप्ति।

वे तुरन्त आसन से उठ खड़े हुए और सम्पूर्ण राजशाही ठाट-बाट के साथ चल पड़े ऋषभदेव के दरबार में।

सुमधुर शहनाई वादन....शंख का कर्णप्रिय उद्घोष....प्रजा का उमड़ता सैलाब और चिहुँदिशि बिखरती श्रद्धा की लालिमा।

गजारूढ़ महास्थविरा मरुदेवी माता के अंग-अंग से आज खुशी और प्रेम अमृत झर रहा था।

मेरा ऋषभ भगवान बन गया।

अरे! अब तो ऋषभ के माधुर्य से परिपूर्ण नयन-प्यालों में मैत्री और ज्ञान का सिंधु लहरा रहा होगा।

कैसा होगा मेरा ऋषभ! वे छोटे छोटे हाथ, जो मेरे गालों को सहलाते थे, आज तो जैसे आशीर्वाद का अमृत बहा रहे होंगे।

देव होंगे, देवेन्द्र होंगे। नर और नरेन्द्र उसकी सेवा में करबद्ध खड़े होंगे। हजारों की जनमेदिनी में वह अपनी माँ को पहचान सकेगा कि नहीं।

अरे ! मैं यह क्या सोच रही हूँ? वह सर्वज्ञ है सर्वज्ञ! भला अपनी माँ को कैसे भूलेगा? आखिर तो मैंने ही उसे पाला-पोसा है। इन्हीं हाथों से खिलाया-पिलाया है। गजराज राजशाही शान-शौकत से आगे बढ़ रहा था। माता मरुदेवी चिंतन में थी, सहसा कानों में शब्द टकराये हैं-मरुदेवानन्दन की जय हो! मरुदेवा नंदन ऋषभदेव भगवान की विजय हो।

मरुदेवी का चिन्तन चक्र घुमा-अरे! निर्मोही के साम्राज्य में मोहिता मरुदेवी का जयघोष! यह जयघोष नहीं, जागृति का उद्घोषक है।मैं मोहमूढ़ बनी क्या-क्या नहीं सोचती रही परन्तु मेरे बच्चे ने तो मेरी कुक्षि को धन्य बना दिया। उसने अपने साथ मेरे नाम को भी अमर कर दिया।

धन्य हो गयी मैं !

धन्य हो गयी मेरी काया!

धन्य हो गया मेरा जीवन!

अब तो समवसवरण मरुदेवी माता के आँखों के सामने था पर वह तो कुछ भी देख नहीं पा रही थी। ऋषभ की यादों में रो-रोकर आँखों की ज्योति लुप्त जो हो चुकी थी। भरत एक-एक दृश्य की व्याख्या कर रहा था।

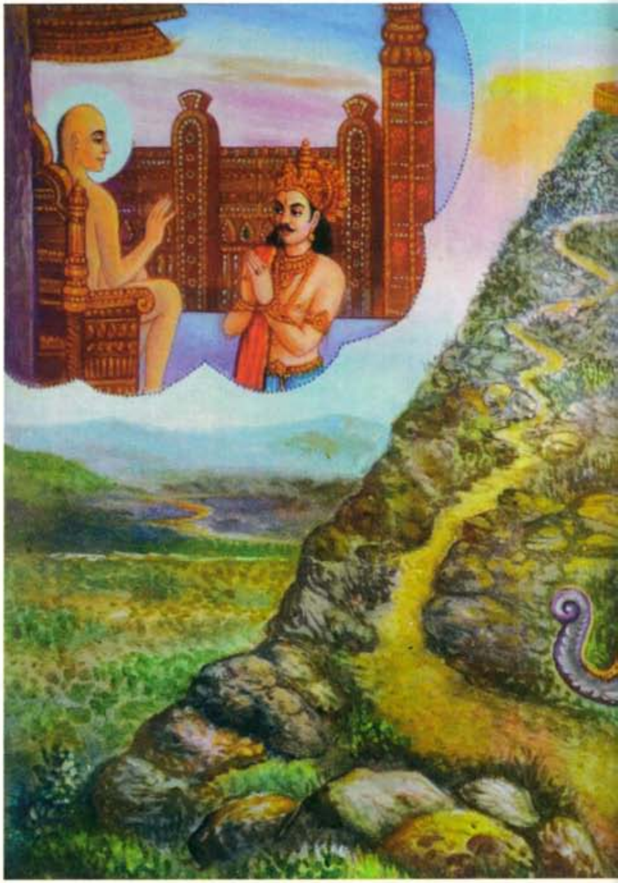

वलयाकार समवसरण!

स्वर्ण सिंहासन पर प्रतिष्ठित ऋषभदेव !

बारह पर्षदा का अनुपम-योग!

अरे! यह मैं क्या सुन रही हूँ ! मणि-मुक्ता के बीच बैठा है निष्काम सहजयोगी मेरा ऋषभ कुमार।

यह सब उसका ही तो प्रताप है, अन्यथा योग साम्राज्य के दिव्य दर्शन का ऐसा लाभ कहाँ?

मैं जब ऋषभ को याद कर रही थी, तब मेरा बच्चा घने जंगलों में आत्म-साक्षात्कार कर रहा था। आज उसका मनोरथ फला है। वास्तव में आत्मा का ऐश्वर्य अनुपम है।

इस जीवन की सार्थकता भी तो आत्म-साधना में है। बाकी तो जन्म-मरण का चक्र अनन्त काल से चल रहा है। इस चक्र को भेदने वाले ही धर्म चक्रवर्ती बनते हैं।

U-14599

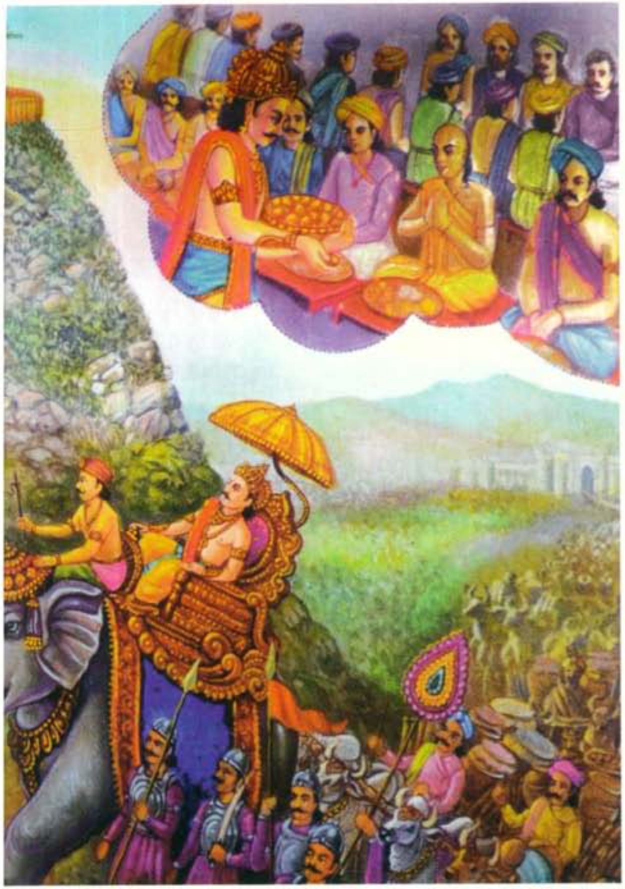

मुझमें भी तो ज्ञान-दर्शन का वही दिव्य सागर लहरा रहा है....मैं भी तो अपरिमित आत्मानंद की महाचेतना हूँ। अब तो कर्मचक्र को भेदकर मुझे भी सिद्धचक्रीश्वर बन जाना है।

भावधारा में मरुदेवी ऐसी बही कि तत्काल केवलज्ञान उपलब्ध हो गया और आयुष्य कर्म की पूर्णता के साथ उनका मोक्ष हो गया।

सम्राट् भरत से लेकर समस्त स्वजन-परिजन शोकाकुल थे परन्तु दादी का यों अचानक निर्वाण को प्राप्त हो जाना ब्राह्मी के लिये अत्यधिक आघातकारी था तथापि उसकी समता अद्‌भुत थी।

रोना-पीटना, आर्त्तध्यान आदि उसने कुछ भी नहीं किया क्योंकि उसकी आत्मा में चिन्तन का दीप जो जगमगा उठा था।

नश्वर संसार का यह शाश्वत सत्य है। उदित सूर्य को शाम ढलते-ढलते अस्त होना ही होता है। फिर दादी की मृत्यु तो उनके लिये महोत्सव बन गयी। वास्तव में जीवन का अन्त इस प्रकार ही होना चाहिये कि कर्म नामशेष हो जाये।

भरत चक्री चले हैं परमात्मा ऋषभ के दर्शन-लाभ के लिये! उनके रोम-रोम में आनंद छलक रहा है। भरत! निमित्त की भोज्य सामग्री साधु के लिए अकल्पनीय है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने भरत ने इन्द्र के कथनानुसार उस भोजन से साधर्मिकों की भक्ति की ।

मुझे भी ऐसी मृत्यु ही वांछनीय है। जीओ तो ऐसे जीओ कि मरने के बाद दुनिया में तुम्हारी याद और फरियाद रहे। बाकी तो कीट-पतंग की तरह रोते-रोते मरना भी कोई मरना है।

दादी माँ के महानिधन ने ब्राह्मी को वैराग्यवती बना दिया। उसे तो बस एक ही काम्य था-परमात्मा का अनुग्रह। वह जानती थी कि यदि प्रभु की शरण मिल जाये तो मेरी मुक्ति की कामना जरूर पूरी होगी। मुक्ति पाने का इससे सरल, सहज और उत्तम मार्ग और कोई नहीं है।

इन्हीं सोचों में डूबी वह बाहुबली के पास पहुँची।

आओ ! ब्राह्मी ! बैठो !

विनयावनत प्रणाम कर ब्राह्मी बाहुबली के सामने बैठ गयी।

भैया! मैं आज एक आत्मिक निवेदन लेकर आयी हूँ। बहुत सम्भव है कि मेरी प्रार्थना तुम्हें प्रियकर प्रतीत न हो तथापि तुम्हें इस छोटी बहना को ध्यान से सुनना है। बाहुबली उदास थे। उनकी आँखों में पितामही के वियोग का दु:ख था।

भैया! जब से मैंने दादी माँ का हाथी के होदे पर बैठे-बैठे देहातीत अवस्था को प्राप्त होना देखा है, तब से मेरा मन इन महलों से ऊब गया है। मैं विरति के उपवन में प्रविष्ट होना चाहती हूँ। सुनकर बाहुबली को जैसे झटका लगा। उसने कब सोचा था कि मैं दादी माँ की वियोग-व्यथा भूल भी नहीं पाऊँगा, उससे पहले यह इस प्रकार संसार-त्याग की बात कहेगी।

मेरी प्रिय बहिन! तूं यह क्या कह रही है? अभी तो दादी माँ के विरह का जख्म भी नहीं भरा है, उससे पहले तूं एक और आघात पहुँचाना चाहती है। सरोष बाहुबली बोला, फिर भी ब्राह्मी का धैर्य पूर्ववत् था। वह जानती थी कि मोहग्रस्त जीवों की मानसिक स्थिति इसी प्रकार की होती है। उसने अत्यन्त प्रेम से बाहुबली के हाथ को अपने हाथ में लेते हुए कहा-भैया! यह सब मोह-राजा का खेल-तमाशा है। पर जो व्यक्ति सम्यक्तया परिस्थिति का आकलन करना जानते हैं, वे सुख की अति में न इतराते हैं, न दु:खों में घबराते हैं। फिर आप तो विवेकी एवं प्रज्ञावान् हैं। इस प्रकार मोहग्रस्त होकर विह्वल मत बनिये।

परन्तु मेरी बहिना! दीक्षा कोई हँसी-मजाक नहीं, जो आज ले ली और अच्छी नहीं लगी तो कल छोड़ दी। पात्र लेकर

घर-घर घूमना, केश-लुंचन करना, परीषहों में समता की कसौटी पर खरा उतरना, विषयों को पराजित करना, ये कोई सामान्य बातें नहीं हैं।

परन्तु भैया! जिसने संयम को जीवन का संकल्प बना लिया है, जिसके हौंसले मजबूत हो और जिसने जन्म-मरण के कुचक्र को भेदने का पक्का मन कर लिया हो, उनके लिये उपसर्ग, कठोर चारित्र-पालन और जिनाज्ञा का अनुसरण, ये सब अत्यन्त सहज हो जाते हैं।

देखो ब्राह्मी! तुम राजमहल के सुखों में पली-बढ़ी हो। तेरी यह कोमल-काया संयम के कष्टों को नहीं सह पायेगी।

कहाँ राजसुखों की शीतल छाया और कहाँ चिलचिलाती धूप। कहाँ सुविधाओं का अम्बार और कहाँ परीषहों की लम्बी परम्परा। इसलिये मेरा कहना मानो। जल्दबाजी न करो। बाद में पछताने से कुछ भी नहीं होगा।

भैया! आप ये क्या कह रहे हैं! ऐसे शब्द आपके मुख से शोभा नहीं देते। हम सभी महावीर ऋषभ की संतान है, जो राजवैभव को तिनके की भाँति छोड़कर साधना के दुष्कर मार्ग पर चले हैं। जिन्होंने कभी भी हार नहीं मानी। कष्टों के सामने घुटने नहीं टेके।

अजेय बाहुबल और कमजोर दिल की बातें। नहीं....नहीं....! मेरा संकल्प सुदृढ़ है। उसमें परिवर्तन की कहीं कोई संभावना नहीं है। आपको हौंसला तोड़ने का नहीं, प्रत्युत बढ़ाने का काम करना चाहिये।

पर मेरा कहना है। जिस प्रकार पिताश्री ऋषभ संसार में रहे और बाद में दीक्षा ली। तुम भी संसार को सुखों को भोगो और बाद में दीक्षा लो ताकि तुम्हारे एक रोम में भी संसार की प्यास न रहे।

भैया! मैं संसार में कोई सुख नहीं मानती। दु:ख की महाग्नि में चारों तरफ जीव झुलस रहे हैं । जहाँ देखो, वहाँ स्वार्थ की गंदी नालियाँ बह रही हैं। राग-द्वेष के कारखानों की स्वार्थ की चिमनियों से केवल और केवल कषाय और मिथ्यात्व का धुआँ निकल रहा है। अत: मुझे ऐसे सुख की कोई भूख नहीं है।

रही पिताश्री के दीक्षा की बात। उनका तो यह अन्तिम भव है। चरम शरीरी को भोगावली कर्म भोगने ही होते हैं और फिर

संसार के पदार्थों में न कोई सुख है, न उनकी प्राप्ति में तृप्ति है। क्षणिक है उनसे उत्पन्न सुखानुभूति! इसलिये उनका त्याग ही अव्याबाध सुख का राजमार्ग है।

तुम सोचते हो कि मैं त्याग कर रही हूँ पर वास्तविकता यह है कि मैं पा रही हूँ। नश्वर सौन्दर्य के त्याग के बल पर शाश्वत आनंद और ऐश्वर्य को।

पिताश्री ने इन भोगों में कभी भी सुख नहीं माना। वे तो संसार के पंक-सागर के मध्य भी कुमुद-पत्र की भाँति निर्लिप्त रहे। मैं आपसे कुछ नहीं चाहती। केवल संयम के उपवन में जाना चाहती हूँ और उसी में मेरा आनंद है। क्या आप बहिना की छोटी-सी बात नहीं मानोगे?

बाहुबली समझ गए-ब्राह्मी का संकल्प अटूट है। इसका वैराग्य ताश के पत्तों की भाँति सामान्य हवा से बिखरने वाला नहीं। क्या महासुमेरु कभी महाप्रलय के सामने झुका है? वह झुके तो ब्राह्मी का निर्णय बदले।

उसने प्रेम से उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा-बहिना! तूंने जिस महापथ का चयन किया है, वह संपूर्ण इक्ष्वाकु परम्परा को उज्ज्वल करने वाला कदम है। यद्यपि मोहवश मेरा मन तुझे वनों में विचरण करने की आज्ञा नहीं देता तथापि तेरा फौलादी संकल्प देखकर तुझे रोक पाना अत्यंत दुष्कर है।

जा बहिना जा! तेरा पथ निष्कंटक बने। तूं शीघ्र ही अणगार जीवन में कर्म राजा को परास्त करती हुई आत्मा का वैभव प्राप्त कर। कहते हुए बाहुबली की आँखों से चौधार अश्रुधार बह चली।

आनंद की उर्मियों से उछलती हुई ब्राह्मी सपरिवार-सप्रजा प्रभु के समवसरण में आयी और प्रभु के पावन-चरणों में समर्पित हो गयी।

इस प्रकार ब्राह्मी ने इस अवसर्पिणी काल की प्रथम साध्वी बनने का गौरव प्राप्त किया। योग्यतानुसार वह तीन लाख श्रमणियों की प्रमुखा बनी और अन्त में समस्त कर्मों का सर्वथा क्षय कर मुक्ति की ओर प्रस्थान कर गयी।

Vijay '10

नरय दुवार निरूंभण-कवाड-संपुड-सहोअरच्छायं।
सुरलोअ-धवल मंदिर आकहणे पवर-निस्सेणि ।।

शील वह तत्त्व है, जो नरक के द्वारों को बंद करने में किवाड के समान है।
शील देवलोक के उज्ज्वल विमानों पर आरुढ होने में निश्रेणी के समान है।

शीलकुलकम - 4

शील जीवन का अमृत है और अशील जहर। आर्य संस्कृति में शील को प्राणों से अधिक मूल्यवान माना गया है।

वह भी एक युग था, जब धारिणी शील की सुरक्षा में जीवन को बलिदान की वेदी पर चढ़ाने में भी नहीं हिचकिचायी।

एक दिन आज का है, जब नारी को शील से प्यारा सौन्दर्य है। संस्कार से प्रिय सुविधा है। उसके शरीर पर गहने सज रहे हैं और वस्त्र उतर रहे हैं।

सोलह सतियों के तीन खण्ड- सत्य का अमिट सौन्दर्य, शील के अमिट शिलालेख एवं समय के अमिट हस्ताक्षर, नारी को झिंझोडने, जगाने और शील की ओर ले जाने वाले तीन तेजस्वी सूर्य है, बशर्ते नारी इनके पुण्यकारी पावनतम प्रकाश में जीवन को मांजने का पुरुषार्थ करें।

महातपस्विनी

महासती सुन्दरी

सुन्दरी करबद्ध हो बोली-सौन्दर्य और आसक्ति की कंटीली झाड़ियों के उन्मूलन का महाश्रम साठ हजार वर्ष पर्यन्त करने पर पीछे क्या बच सकता है, इस अशुचिमयी और नश्वर काया में। जिसको मिटना ही है, उसे मिटाकर यदि अमिट को प्राप्त कर लूं तो इसमें हर्ज ही क्या है?

महासती सुन्दरी

परमात्मा आदिदेव तक युगलिक परम्परा गतिमान थी। यौगलिक पद्धति यानि पुत्र-पुत्री का जन्म और उचित समय पर उसका पति-पत्नी में रूपान्तरित हो जाना।

ऋषभदेव के काल में युगलिक परम्परा लुप्त हो रही थी। एक युगल में से पति की अकस्मात् मृत्यु हो गयी। प्रश्न था कि अकेली नारी के जीवन का समुचित प्रबंध किस प्रकार किया जाये।

अन्ततोगत्वा उस नारी को सम्राट् ऋषभ ने समय का तकाजा और जीवन की व्यवस्था का सूत्र ध्यान में रखते हुए स्वीकार कर लिया।

प्रथम पत्नी सुमंगला ने भरत आदि निन्याणु पुत्रों का और दूसरी पत्नी सुनंदा से बाहुबली का प्रसव हुआ। ब्राह्मी भरत की और सुन्दरी बाहुबली की सगी बहन थी।

सम्राट् ऋषभ ने भरत को सुन्दरी और बाहुबली को ब्राह्मी सौंप दी, इस प्रकार युगादिदेव युगला धर्म निवारक के रूप में विख्यात हुए।

ब्राह्मी राज्य-साम्राज्य का त्याग कर आत्म-सिंहासन की दिशा में कदम बढ़ा चुकी थी, तब सुन्दरी का मन भी संयम के लिये लालायित हो उठा।

नहीं....नहीं....अब मुझे स्वार्थ से परमार्थ की महायात्रा का यात्री बनना है। कब तक जन्म-मरण की अंधेरी गलियों में योंहि अपने आपको छकाती रहूँगी।

ऋषभ कुमार की दीक्षा

'जे आसवा से परिसवा' जो कर्म बंधन का कारण है, वही मुक्ति का भी हेतु है। शरीर डूबा भी सकता है, तिरा भी सकता है। इसका ममत्व जहाँ अहंकार और ममकार में फंसाता है, वहीं इसके प्रति अनासक्ति और सदुपयोग की वृत्ति मुक्ति की पंक्ति बन जाती है। केशलुंचन के द्वारा मुनि ऋषभ यही तो उपदेश दे रहे हैं।

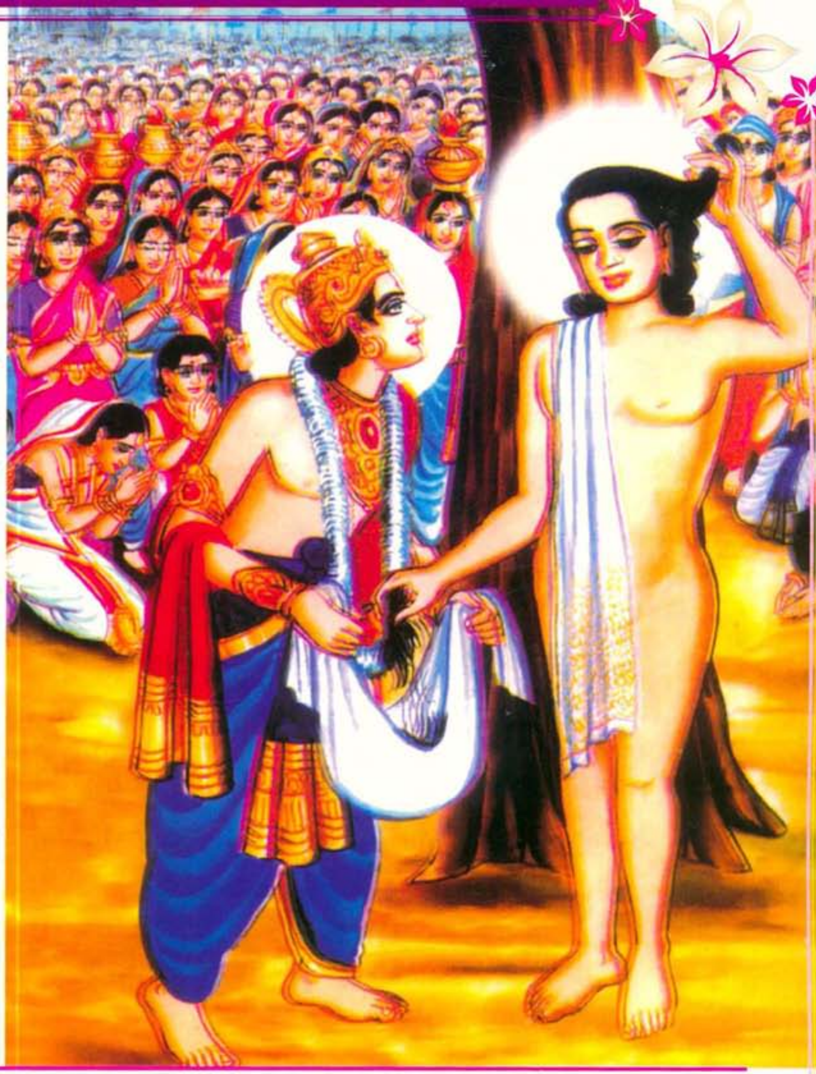

सुन्दरी की आँखों से आँसू बह रहे थे और भरत कह रहा था-सुन्दरी! तेरे कदमों में मेरा सारा संसार न्यौछावर है। तुम्हारा आदेश और मेरा कदम। बोलो, और क्या चाहिये सुखी होने के लिये।

तुम महारानी बनकर राज करोगी राज। ये महल, ये मणि-मुक्ता अलंकृत आभूषण तुम्हारे होंगे। हरे-भरे उद्यान के मध्य तालाब में जब तुम हंसिनी बनकर मुक्तमन से विचरण करोगी, तब जैसे विश्व की सारी खुशियाँ तुम्हारी प्यारी मुस्कानों में समा जायेगी।

सुन्दरी ने दृढ़ पर विनययुत् हो कहा-भरत! मैं इनकी सच में तो क्या, सपने में भी इच्छा नहीं करती।

नहीं चाहिये मुझे भृत्य वर्ग की कतारें।

नहीं चाहिये आकाश को छूते राजभवन!

ये सब संयम के सुखों के सामने वैसे ही तुच्छ और कान्तिहीन हैं, जैसे पारसमणि के सामने पत्थर।

मैं किसी और को दास बनाने की बजाय अपना मालिक बनना पसंद करती हूँ। गुलामी की दीवारों में जीने की अपेक्षा अनशन कर लेना श्रेयस्कर समझती हूँ।

पर तूं राजमहिषी बनेगी! शासन की सारी बागडोर तेरे हाथों में होगी और यह भरत तुम्हारी आँखों के सामने।

नरेन्द्र भरत! मैं राजमहिषी नहीं, आत्म-मनीषी बनना चाहती हूँ। फिर इन सम्बन्धों का क्या है! संसार के रंगमंच पर अनन्तकाल से जो नाटक चल रहा है, उसमें न कोई सार है, न कोई पार हैं। मुझे तो उसमें स्वार्थ, प्रपंच और धोखे की बूं आती है।

मेरा तो बस इतना ही कहना है कि मेरे क्षण व्यर्थ जा रहे हैं, अत: आप शीघ्र मेरे पथ को व्यवधान मुक्त कीजिये।

सुन्दरी बहुत रोयी, पर उसका रूदन अरण्य रूदन की भाँति सर्वथा व्यर्थ गया। भरत ने उसकी एक न सुनी।

पर सुन्दरी का निवेदन जीवन का जैसे नित्यक्रम बन चुका था।

रोज-रोज के इस निवेदन से भरत सकते में आ गया। वह समझ गया कि जल्दबाजी करना उचित नहीं है। समय जरूर मेरे पक्ष में होगा पर वहाँ तक धैर्य को जीवन्त रखना होगा।

वह सुन्दरी की सुव्यवस्था कर विश्व-विजय हेतु रवाना हो गया।

सुन्दरी ने सोचा-आखिर ऐसी कौनसी बात है, जिसको लेकर भैया भरत मुझे दीक्षा लेने से रोक रहे हैं।

बहिन ब्राह्मी को बाहुबली ने सहर्ष आज्ञा दे दी और मुझे निषेध आज्ञा।

क्या मुझमें पराक्रम और संकल्प का अभाव है या मैं चारित्र पालन में सबल नहीं हूँ।

ब्राह्मी-सा ही पराक्रम.....!

जिनाज्ञा के प्रति रोम-रोम से छलकता अहोभाव ......!

कठोर चारित्र पालन के प्रति तीव्र उत्कंठा......!

मुक्ति-स्पर्शन की अखूट झंखना......!

ओह! निर्बलता अन्तर की नहीं, बाहर की है।

मेरा मनमोहक सौन्दर्य ही मेरी समस्या बन गया है। मेरे लावण्य के मोह में अटक कर भरत मुझे संयम की आज्ञा नहीं दे रहे हैं।

रास्ता साफ था और लक्ष्य स्पष्ट! सुन्दरी ने तुरन्त एक भीष्म प्रतिज्ञा की-मैं इस नश्वर रूप राशि को शाश्वत तप की अग्नि में भस्मीभूत कर दूंगी। आयम्बिल की मांगलिक तपस्या में वह अपने आपको तपाने लगी।

भरत सम्राट् दिग्विजय कर साठ हजार वर्षों बाद आये, तब तक भी सुन्दरी के तप का दीप और विराग की शिखा जरा भी मंद नहीं हुई थी।

सुन्दरी को देखने की ललक में वे तुरन्त अन्तःपुर में पहुँचे पर सुन्दरी अब सुन्दरी न रही। लम्बे, कड़े और उग्र तप में उसका सारा सौन्दर्य विलीन हो गया। जैसे अस्थि-पंजर एक ढांचा मात्र रह गया। न कोमलता रही, न कमनीयता। तेज कदमों से भरत सुन्दरी के कक्ष में पहुँचे पर पहचान न पाये। ऐसी हालत देखकर वे गद्गद् हो उठे।

साश्रुनयन बोले-सुन्दरी! यह तूंने क्या कर दिया? ऐसी कैसे हो गयी?

सुन्दरी करबद्ध हो बोली-सौन्दर्य और आसक्ति की कंटीली झाड़ियों के उन्मूलन का महाश्रम साठ हजार वर्ष पर्यन्त करने पर पीछे क्या बच सकता है, इस अशुचिमयी और नश्वर काया में! जिसको मिटना ही है, उसे मिटाकर अमिट को प्राप्त कर लूं तो इसमें हर्ज ही क्या है?

हाँ राजन्! चक्ररत्न के आयुधशाला में प्रवेश नहीं पाने का कारण आपके अनुज बाहुबली का अलग से राज्याधिपत्य लेकर बैठना है।

पर मैं अनुज के विरूद्ध युद्ध की शंख ध्वनि नहीं कर सकता! इससे इक्ष्वाकु कुल की महान् परम्परा गौरवान्वित होने की बजाय कलंकित होगी।

– पर तुम्हारा सौन्दर्य मुझे तीनों लोकों से प्यारा था।

– भैया! तुम्हें मेरे सौन्दर्य से लगाव था, मेरी भावनाओं से नहीं। जब सौन्दर्य ही नहीं रहा तो मोह के आवरण भी नहीं रहे। मैं जानती हूँ इस महामाया में उलझकर ही हमने हजारों भव व्यर्थ किये हैं।

भरत का माथा झुका हुआ था। आँखें पश्चात्ताप के आँसूओं से भरी हुई थी। अपने किये पर गहरा अनुताप करते हुए भरत बोले–बहिन सुन्दरी! मैंने तुम्हारी भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया, इसलिये मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। अपने भाई को क्षमा कर दो भगिनी!

सुन्दरी बोली–तुम मेरे नहीं, स्वयं के अपराधी हो। मेरे रूप के मोह में पागल होकर तुमने चारित्र मोहनीय कर्म बांधे हैं। चूंकि इसमें निमित्त मैं बनी, इसका मुझे अन्त:करण से दु:ख है।

भरत बोला–वास्तव में तुम्हारी भावनाएँ कितनी उदात्त और कल्याणकारिणी हैं। तुम छोटी होकर भी बड़ी हो। नारी होकर भी पूजनीया हो। तुम्हारा मन तुम्हारे तन से लाखों गुणा सुन्दर है।

भैया! जब मेरे ही अन्तराय कर्म का उदय था, तब भला इसमें तुम्हारा क्या दोष?

बोधि - दान

संबुज्झह किं न बुज्झह ! सम्यग्बोधि को प्राप्त क्यों नहीं होते ! बोधि की उजली किरण पा लो, बाहर–भीतर के सारे अंधकार विलीन हो जायेंगे।

परमात्मा की जादु भरी दिव्य–वाणी का चमत्कार हुआ। 98 भाईयों के आत्म धरातल पर जीवन–परिवर्तन का चमत्कार घटित हो गया।

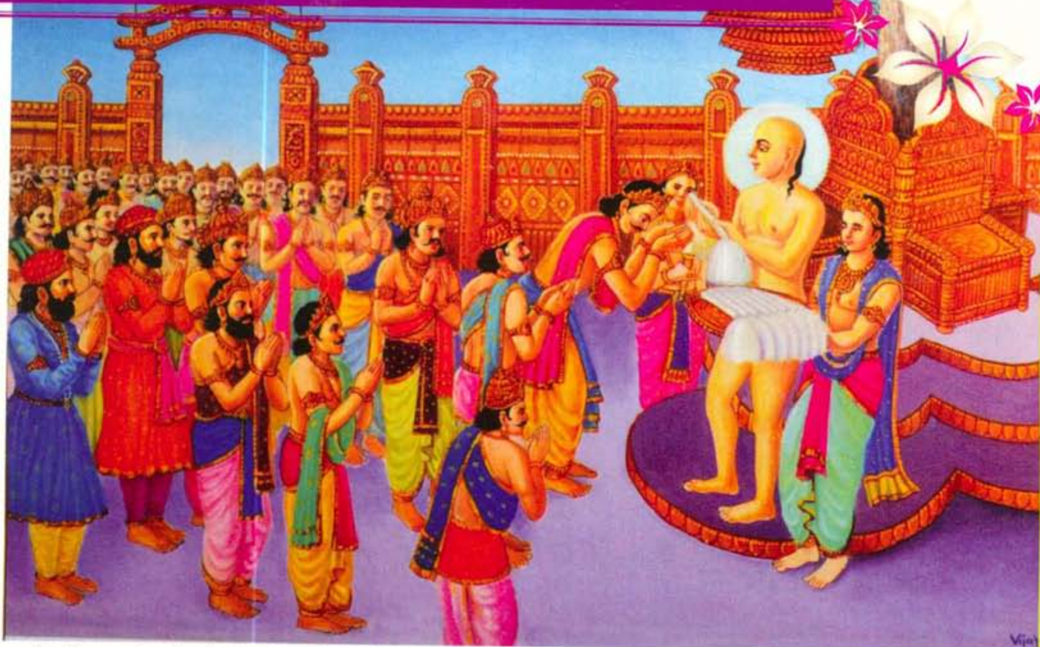

'बीती ताहि विसारि दे, आगे की ले सुध' जो होनी थी, हो गयी। अब बस शीघ्र ही मेरी भावना को सफल करो।

नगर सजा, घर सजा, महल और उद्यान सजे। महामहोत्सवपूर्वक सुन्दरी प्रभु के चरणों में सर्वात्मना समर्पित हो गयी और ज्येष्ठ भगिनी के सानिध्य में चारित्र के सोपान चढ़ने लगी।

और इधर एक दिन....

महाराज की जय हो, विजय हो। कहते हुए सुषेण सेनापति ने चक्रवर्ती सम्राट् का अभिवादन किया।

तुम्हारे माथे पर ये पसीने की बूँदें कैसी?

महाराज! आपकी कृपा से सब कुछ कुशल है पर चक्र रत्न आयुधशाला में प्रविष्ट नहीं हो रहा।

क्या? चक्र रत्न आयुधशाला में प्रविष्ट नहीं हो रहा?

हाँ चक्रीश्वर!

समस्त राजमुकुट हमारे चरणों में नत-प्रणत हो चुके, फिर यह व्यवधान कैसा? हमारी विश्व-विजय तो हो चुकी।

नहीं....नहीं महाराज! आप भूल कर रहे हैं?

कैसी भूल? भरत ने विस्मित हो प्रश्न पूछा।

महाराज! जब तक आपके 99 अनुज अलग-अलग राज्याधिपत्य लेकर बैठे हैं, तब तक दिग्विजय का यह डंका अधूरा ही समझिये।

तो फिर उन्हें शीघ्र ही सूचित किया जावे कि वे स्वतंत्र सम्राट्-पद को त्याग कर सामन्त राजा के रूप में अपनी अधीनता स्वीकार करें।

जो आज्ञा महाराज! आज ही चक्रीश्वर के दूत के साथ संदेश को भेज दिया जायेगा।

98 भाई अग्रज के आज्ञा-पत्र को सुनकर चकित हुए बिना न रहे। अरे! बड़े भैया को इतना बड़ा राज्य मिला है, विश्व विजेता बनकर भी उनकी भूख शान्त नहीं हुई, जो वे हमारे राज्यों पर भी अधिकार जमाना चाहते हैं?

पर हमारा भी स्वतंत्र अस्तित्व है। परतन्त्र होकर जीना भी कोई जीना है।

तो क्या हम समर-स्थली में आमने-सामने हो जाये?

नहीं....नहीं.... यह भी उचित नहीं है। भोग विजेता के पुत्र होकर यदि हम राजवैभव के लिये अग्रज से युद्ध करते हैं तो यह भी हमारी अधमता ही होगी।

भरत ओर बाहुबली! विश्व की दो अजेय महाविक्रमी शक्तियाँ। युद्ध जल्दी अंजाम कैसे देता! पूरे 12 वर्षों तक युद्ध चला! इसकी परिसमाप्ति बाहुबल पर निर्धारित न होकर त्याग बल पर ही हुई !

भोग की त्याग–भावना ने क्षण मात्र में समर का दृश्य बदल दिया। युद्ध भूमि पर यतित्व व यतना के अंकुर खिल उठे।

98 भ्राता चल पड़े प्रभु ऋषभदेव की शरण में।

प्रभो! रास्ता दिखाइये। एक तरफ स्वतन्त्रता का हनन है तो दूसरी और इक्ष्वाकु कुल की महान् परम्परा को कलंकित करने वाली तुच्छता।

हम क्या करें ? जब हमें युद्ध और अधीनता, दोनों ही स्वीकार्य नहीं ।

वत्स! अपने साम्राज्य के स्वामी बनो। ऐसा सिंहासन हासिल करो, जिसे कोई हड़प न सके। आत्मा को पहचान कर सच्ची स्वतन्त्रता हेतु प्रयत्नशील बनो।

प्रभु से प्रतिबुद्ध हो 98 भ्राता दीक्षित हो दिव्य सिद्ध-पद के पथ पर चल पड़े।

यह सुनकर भरत अत्यन्त शर्मिन्दा हुए कि मैं प्रभु का कैसा अधम पुत्र, जो भाईयों के राज्य को हड़पने चला और वे कैसे महान् पुत्र, जो समस्त राज वैभव को ठोकर मारकर ठाकुर बनने चल पड़े।

इधर बाहुबली ने जब चक्रवर्ती सम्राट् की आज्ञा सुनी तो कुपित हुए बिना न रहा-मेरा बड़ा भाई होकर मुझ पर ही

अधिकार जमाने चला है। इतनी विपुल सम्पदा और विशाल साम्राज्य को पाकर भी उसकी प्यास नहीं बुझी, धिक्कार है उसकी तुच्छ मनोवृत्ति को।

नहीं....नहीं....महाराज! यह तो विश्व एकता का एकसूत्री कार्यक्रम है। सम्पूर्ण मानव जाति को सुख और शान्ति की समान छाँव मिले, इसलिये चक्रीश्वर का यह फरमान है। आप उन्हें गलत समझ रहे हैं।

ओहो....हो...हो...! विश्व शान्ति की स्थापना या हजारों बेकसूर मानवों को इच्छा की महावेदी पर होमने का बर्बर भर्त्सना योग्य कलंक।

लाखों लोगों के सिर पर तलवार चलाकर विश्व मैत्री की स्थापना का महान् मंत्र कोई चक्रीश्वर से ही सीखे।

महाराज! यदि आपने उनकी अधीनता स्वीकार न की तो युद्ध के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचेगा।

जा....जा! कह देना अपने चक्रवर्ती से कि बाहुबली तुम्हारी खोखली धमकियों से डरने वाला नहीं। 98 भाईयों के राज्य को तलवार की धार पर हड़पने में उसकी कोई महानता नहीं। वह जब समर-आँगन में बाहुबली के क्षात्र तेज को देखेगा तब पता चलेगा कि मुकाबला क्या होता है। भरत को बाहुबली से इस प्रकार के व्यंग्य, कटाक्ष और धमकी भरे प्रत्युत्तर की जरा भी आशंका नहीं थी।

पर अब क्या करें?

एक तरफ भाई है, दूसरी ओर चक्रवर्तीत्व!

किसे छोड़े....किसे स्वीकार करें।

चक्रीश्वर भरत! आप यह क्या कह रहे हैं? बाहुबली भले ही स्वतन्त्र राज्य करें! पर इससे तो चक्रवर्तीत्व की सुदीर्घ यात्रा अधूरी ही कही जायेगी।

भले कही जाये। पर मैं अनुज के साथ रण-मैदान में उतर जाऊँ, यह कदापि सम्भव नहीं।

पर महाराज! यह अनादिकाल से चली आ रही दिव्य परम्परा का सरासर अपमान है। प्रश्न आपका नहीं, चक्रवर्ती पद की तौहीन का है।

दिग्विजय की अधूरी यात्रा का जब-जब इतिहास पन्नों पर अंकन होगा तब-तब इसे आश्चर्यकारी घटना के रूप में नहीं, लज्जास्पद घटना के रूप में अंकित किया जायेगा। अन्ततोगत्वा बाहुबली के विरूद्ध युद्ध का बिगुल फूंक दिया गया।

दोनों की सेनाएँ समर-क्षेत्र में आ खड़ी हुई। अश्व हिनहिना उठे। हाथी चिंघाड़ने लगे। रथ के पहियों में जैसे विद्युत्-तरंगें झंकृत हो उठी।

हजारों हजारों का हय-गय-रथ दल! एक तरफ अग्रज, दूसरी तरफ अनुज। दोनों महाप्रभु ऋषभ की संतान। लाखों की संख्या में प्रेक्षक। आँखों में भय, मन में आशंका और हृदय में उत्कंठा। नभमण्डल में उतर रहे थे सहस्र देव-विमान।

भरत और बाहुबली में युद्ध

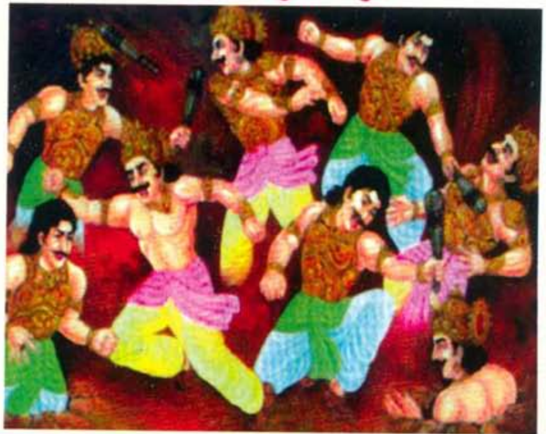

भरत और बाहुबली, दोनों ही चिंतन में थे।

रणभेरी बजी नहीं और संग्राम छिड़ा नहीं।

हजारों-लाखों निर्दोष प्राणियों का भूमि को रक्तदान! जब दो भाईयों की इच्छाओं से संघर्ष की चिंगारी फूटी है तो युद्ध भी उन दो में ही हो। भला क्यों हजारों माताओं को पुत्रविहीन, बहिनों को भ्राता-विहीन और पत्नियों को पतिविहीन किया जाये।

भरत बोला–बाहुबली! युद्ध जब हम दोनों के बीच है तो हजारों–लाखों बेकुसूरों का खून बहाने से क्या लाभ? क्यों न हम दोनों में ही मुकाबला हो जाये।

सम्राट्! मैं भी यही चाहता हूँ क्योंकि चक्रवर्ती पद की भूख तुझे है तो पाठ भी तुझे ही पढ़ाया जाये।

सैन्य समूह प्रेक्षक–वर्ग में बदल गया और अनुज–अग्रज दोनों रणभूमि में उतर आये।

सबसे पहले दृष्टि युद्ध हुआ और भरत हार गया। बाहुबली की सेना ने जयनाद से नभमण्डल को गूंजा दिया।

दण्ड युद्ध, बाहु युद्ध में क्रमशः मिली पराजय ने भरत के हौंसले पस्त कर दिये–अरे! चक्रवर्ती मैं हूँ या ये? चक्रवर्ती की आँखें निराश थी।

इतने में मुष्ठि युद्ध का प्रारम्भ हुआ। भरत ने पूरा दम लगाकर बाहुबली पर मुष्ठि प्रहार किया परंतु उसने पूरी ताकत

भाव - प्रभाव

महर्षि बाहुबली की ध्यान साधना के दिव्य परमाणुओं ने जंगल में मंगल की रचना की । हिंसक बाघ, उन्मत्त हाथी, विषैले सर्प, सरल हरिण आदि प्राणियों के जीवन का परिमार्जन बाहुबली की सूक्ष्म शक्तियों ने किया। पारस्परिक वैरभाव को विस्मृत कर कितने–कितने प्राणी मुनीश्वर बाहुबली की ध्यान छाया में शीतलता का रसपान करने लगे।

लगाकर अपने आपको भूगर्भस्थ होने से बचा लिया।

बाहुबली मुझसे अधिक बलशाली है। कहीं ऐसा न हो कि इसके प्रहार से मेरा नामोनिशान ही न रहे। इस आतंक से भरत मन ही मन कांप उठा। जब कोई उपाय न सुझा तो प्राण बचाने के लिये उन्होंने बाहुबली पर चक्र चला दिया।

चक्र की अपनी मर्यादा थी। वह भाई का वध कैसे करता। अत: बाहुबली की प्रदक्षिणा देकर वह प्रत्यावर्तित हो गया पर अब बाहुबली का कोप आसमान को छू रहा था।

मेरा भाई होकर मुझ पर ही चक्र का प्रयोग करता है और वह भी मर्यादा का उल्लंघन करके।

सिंह की भाँति बाहुबली गरज उठा-भरत! मर्यादा को तोड़ने वाले नामर्द होते हैं। वीर प्राण दे देते हैं पर अनुशासन से बाहर नहीं जाते। आज तेरे अपराध पाप की सजा तुझे भोगनी ही होगी।

एक कदम

बहिनों के बोध ने बाहुबली को झकझोर दिया। चिन्तन करते करते अपनी उस भूल की दीवार के निकट आ गये, जो महासूर्य कैवल्य के प्रकाश को बाधित कर रहा था। एक कदम उठा और बाहुबली अंधकार से प्रकाश में आ गये।

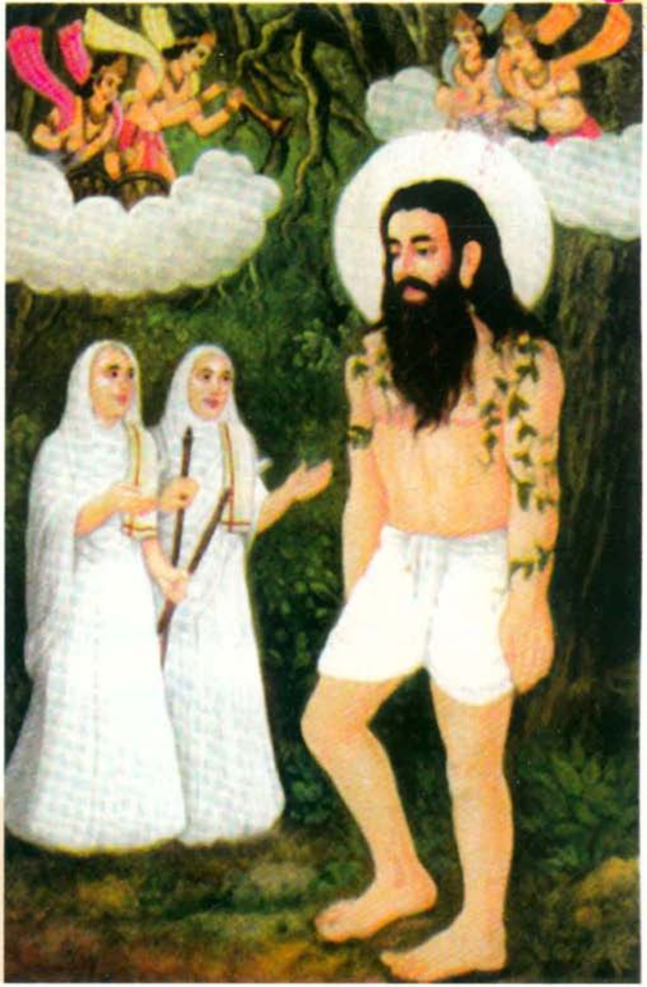

भरत सामने आती मौत को देख रहा था। बाहुबली की बलशाली मुष्ठि उठी और चारों तरफ हाहाकार मच गया।

इतने में आकाशवाणी हुई- बाहुबली! अग्रज पर प्रहार करना शोभा नहीं देता। इससे तेरा अपूर्व बल गौरवान्वित नहीं अपितु कलंकित ही होगा।

अग्रज पर प्रहार करने के लिये इतिहास तुझे कभी माफ नहीं करेगा। उठी हुई मुष्ठि खाली कैसे जाती। उसी मुष्ठि से देखते-देखते बाहुबली ने केश लुंचन कर दिया। वस्त्राभूषण त्याग कर वहीं ध्यानस्थ हो गये।

जनसमूह ने विस्मित आँखों से आँसू बहाएँ। भरत का निवेदन भी विफल गया।

चक्रवर्ती, राजा, सैन्यदल सभी लौट गये श्रद्धा का अर्घ्य अर्पित कर।

बाहुबली के मन में आया-प्रभु ऋषभदेव के समवसरण में जाता हूँ।

तुरन्त मन बदला-नहीं....नहीं....! वहाँ अनुज मुनि भी तो हैं। मैं अग्रज, और अनुज मुनियों को वंदन। यह मुझसे सम्भव नहीं होगा।

जब केवलज्ञान हो जाएगा, तभी जाऊँगा ताकि वंदन-व्यवहार का प्रश्न ही नहीं रहेगा।

मुनीन्द्र ध्यान में मेरू की भाँति निश्छल खड़े थे।

न बोले, न डोले !

न चले, न हिले !

पक्षियों ने घौंसले बना दिये। लताएँ शरीर से लिपट गयी।

सर्दी आयी !

सूरज तपा !

पानी बरसा !

पर मुनीश्वर की साधना निराबाध गतिमान थी।

अब लगभग एक वर्ष पूर्णता के निकट था।

ऋषभदेव ने कहा-ब्राह्मी! सुन्दरी! जाओ! बाहुबली की साधना केवलज्ञान के निकट पहुँच चुकी है। उसके मानसिक अभिमान का शल्योद्धार कर अन्तर्तम को विनष्ट करो।

ठूंठ की भाँति निश्छल ध्यानस्थ महामुनि !

उनके शरीर का स्पर्श पाकर पवित्र हो रहा अवनिमण्डल....नभमण्डल!

दोनों बहिनें भ्राता मुनि के सन्निकट पहुँची और कहने लगी-**वीरा मोरा! गज थकी उतरो। गज चढ्या केवल न होसी रे।**

'वीरा' शब्द सुना और बाहुबली का ध्यानक्रम खण्डित हुआ।

ये तो ब्राह्मी-सुन्दरी का शब्द-माधुर्य है।

मुझे गज से उतरने का कह रही जबकि मैंने तो हय-गय-रथ ही नहीं, राजमहल-राजमुकुट भी छोड़ दिये।

बाहर से मुड़कर बाहुबली ने ज्योंहि भीतर में देखा तो समझ गये-अरे! जब मैं अभिमान के गजराज पर सवार हूँ फिर कैसे हो सकता है कैवल्य-रश्मियों का प्रकटीकरण।

मुनि को स्वयं पर पश्चात्ताप हो आया।

सब कुछ छोड़कर भी मैं ज्येष्ठ-कनिष्ठ की व्याख्या में उलझा रहा। नहीं....नहीं....अभी जाता हूँ प्रभु के समवसरण में। बाहुबली के कदम उठे और सयोगी केवली गुणस्थानक में पहुँच गये।

देव-दुंदुभि के निनाद से अम्बर गूंज उठा। पुष्प-वर्षा से धरा महक उठी।

तत्काल विहार कर मुनि समवसरण में पहुँच गये। दीर्घकाल पर्यन्त संयम पालकर अन्त में सुन्दरी ने भी सुन्दर मोक्ष-नगर में प्रवेश पाया।

ब्राह्मी-सुन्दरी के भव

देहातीत साधना का अखण्ड धाम महाविदेह क्षेत्र

ख्यातिप्राप्त शान्तिपुंज क्षितप्रतिष्ठित नगर !

इसी नगर में रहते हैं-राजपुत्र महीधर, मंत्रीपुत्र सुबुद्धि, वैद्यपुत्र जीवानन्द, श्रेष्ठिपुत्र पूर्णभद्र, शीलपुंज और केशव कुमार।

इन सभी की मित्रता इतनी प्रगाढ़ कि पुष्प से पराग अलग हो तो मित्रता में दरार हो।

खाना-पीना एक साथ!

रहना-बैठना एक साथ !

एक के सुख में सब सुखी!

एक के दु:ख में सब दु:खी!

जैसे एक ही मन की छह आकृतियाँ हो।

ऋषभ निवास

एक बार क्रीड़ा-उत्सव के लक्ष्य से वे उपवन में पहुँचे और देखा-

एक मुनिराज!

उनके मुख पर चमकती विराग की कान्ति और देह पर भिनभिनाती हजारों मक्खियाँ।

वैराग्यमूर्ति महामुनि के शरीर से अविरल बह रही मवाद की धारा को देखकर छहों अवाक् रह गये। यद्यपि उनके शरीर को छूकर आ रही पवन में इतनी दुर्गन्ध थी कि सहन न हो सके पर पूर्वजन्म के पुण्योदय से छहों मित्रों के मन में जैसे वेयावच्च और सेवा झरणा फूट पड़ा।

एक मित्र बोला-अरे! इनके शरीर की चमड़ी गल चुकी है। ये तो कुष्ठ रोगी प्रतीत होते हैं।

दूसरे ने कहा-देख नहीं रहे, शरीर में जगह जगह घाव हो चुके हैं और उनमें कीड़े कुलबुला रहे हैं, फिर भी मुनिवर समता की प्रतिमा बनकर सहन कर रहे हैं। धन्य है इनका समभाव। परम देहातीत भावों से ओत-प्रोत होकर अपना जीवन सफल कर रहे हैं।

एक मित्र बोला-वैद्यपुत्र! तुम्हारे पिताश्री एक सफल और सर्वश्रेष्ठ वैद्यराज हैं, उनसे भी बढ़कर तुम्हारी चिकित्सा-कला है। यदि मुनीश्वर की चिकित्सा तुम्हारे द्वारा हो जाये तो हमारी जीवन-यात्रा सफल और सुखद बन जाये।

राजपुत्र बोला-वैद्यतनय! हमसे यदि किसी भी प्रकार के सहयोग की अपेक्षा हो तो हम सानंद तत्पर हैं।

स्वयं जीवानंद वैद्य की आँखें भी प्रसन्नता मिश्रित अनुमोदना से भर आयी-अहो! आज मेरा जीवन, मेरी कला, मेरी विद्या गौरवान्वित होगी। मुनीन्द्र की चिकित्सा के बहाने मेरे अन्तर्मन की भी शल्य-चिकित्सा हो जायेगी।

रोग-मुक्ति के उपायों पर चिन्तन करने के बाद जीवानंद बोला-मित्रों! मुनिवर की चिकित्सा हेतु तीन चीजों की जरूरत हैं और वे भी दुष्प्राप्य हैं।

- कौनसी तीन वस्तुएँ?

रत्न कम्बल, गौशीर्ष चन्दन और लक्षपाक तेल। इन तीन अलभ्य वस्तुओं के योग से ही रोग-निदान सम्भव है।

और यह सर्वाधिक जरूरी है कि इन वस्तुओं का मुनि सेवार्थ क्रय न किया जावे। हम श्रावक हैं और हमारा कर्त्तव्य बनता है कि मुनि को निर्दोष चिकित्सा उपलब्ध हो। लक्षपाक तेल मेरे पास उपलब्ध है पर शेष दो वस्तुओं की खोज करनी होगी।

उसके लिये हम तैयार हैं। पाँचों मित्र बोले।

पर ऐसी कीमती वस्तुएँ सेवार्थ देने के लिए भला कौन तैयार होगा! और क्रीत सामग्री का साधु के लिये उपयोग नहीं किया जा सकता।

पाँचों मित्र झुंझलाहट से भरकर बोले-अरे! तुम भी कैसी बातें कर रहे हो। माना कि गोशीर्ष चन्दन और रत्न कम्बल, ये दोनों दुर्लभ्य है पर अलभ्य नहीं। ऐसे अनुपम अवसर पर हमें निराश नहीं होना चाहिये। खोजने से भगवान भी मिल जाता है तो फिर ये तो पदार्थ हैं। मुनिश्री का पुण्य उनके साथ हैं, अत: हमें अवश्य ही ये पदार्थ प्राप्त हो जायेंगे, ऐसा हमारा मन कहता है।

वे सभी उन्हीं पाँवों रत्न कम्बल और गोशीर्ष चन्दन की खोज के लिये चल पड़े। गली-गली की हर दुकान पर पहुँचे, पर उन्हें निराशा ही हाथ लगी । पर हिम्मत और हौंसला न हारते हुए उन्होंने अपनी खोज जारी रखी, आखिर उनकी मेहनत रंग लायी। एक दुकान पर काम्य वस्तुएँ प्राप्त हो गयी पर मुनिवर को क्रीत दोष न लगे, इस बात का भी ध्यान रखना था। अन्यथा खरीदने के लिये उनके पास धन की कोई कमी नहीं थी।

मुसीबत यह थी कि वह विक्रेता बिना मूल्य देने के लिये तैयार नहीं हुआ। श्रद्धा और संकल्प भाव से पाँचों मित्र अपना धर्म बजाते रहे।

अरे भैया! तुम्हारी वस्तु मुनि की सेवा में काम आये, तेरा इससे ज्यादा पुण्य और क्या हो सकता है। सेवा जैसा गहन धर्म योगियों को भी नहीं मिलता। इस अवसर को चूक मत। ये मौका पुन: मिलेगा, जरूरी नहीं।

दाता का हृदय श्रद्धा ये छलक उठा। अहा! मेरा पुण्य वास्तव में निराला है। सहर्ष ये वस्तुएँ तुम्हें देने के लिये मैं तैयार हूँ।

अब भी एक प्रश्न शेष था क्योंकि भिक्षाचर्या और उनकी वेयावच्च, ये दोनों कार्य किसी मुनि के माध्यम से ही हो सकते थे।

वे तुरन्त समीपस्थ उपाश्रय में पहुँचे। वहाँ मुनिवर बिराजमान थे। उन्हें वस्तु-स्थिति निवेदित की। वेयावच्च का अलौकिक लाभ मुनिश्री जानते थे। वे तत्काल उनके साथ चल पड़े। सबसे पहले उन्होंने उस दुकान पर बहुमूल्य पदार्थों की याचना की। उस वणिक् ने अत्यन्त श्रद्धा-भाव से वस्तुएँ प्रदान की।

वहाँ से वे रूग्ण मुनि के पास पहुँचे और सेवा शुरू कर दी।

सर्वप्रथम रूग्ण मुनि के शरीर पर लक्षपाक तेल लगाया और रत्न कम्बल ओढ़ा दिया। चिकित्सा का चमत्कार तो होना ही था। चर्म में जितने कुष्ठ रोग के कीटाणु थे, तेल की उष्णता से बाहर आकर कम्बल से चिपक गये। उन सबको एक तरफ निरवद्य भूमि पर ले जाकर अलग कर दिया। तेल की गर्मी को दूर करने के लिये गोशीर्षचन्दन का लेप कर दिया। इस प्रक्रिया से पहले ही दिन आधी व्याधि समाप्त हो गयी।

दूसरे दिन भी यही प्रक्रिया अपनायी गयी, जिससे मांसगत कीटाणु बाहर आ गये। तीसरे दिन की चिकित्सा से अस्थिगत जीवाणु विदा हो गये, इस प्रकार तीन दिन में मुनि की काया परिपूर्ण स्वस्थ हो गयी।

मुनिवर ने छहों मित्रों को धर्म का उपदेश दिया।

उनकी सौम्य मुद्रा....।

सहज सुन्दर दर्शन....।

उत्तम समता की साधना....।

छहों मित्र प्रभावित हुए बिना न रहे। अब तो वे इतने प्रभावित हो गये कि प्रतिदिन उनके आभावलय में पहुँचकर जीवन-दर्शन से लाभान्वित होने लगे। श्रद्धा और प्रेम ने उन्हें बहुत करीब लाकर खड़ा कर दिया।

विविध प्रसंगों पर प्रतिदिन चल रही चर्चा एक दिन मुनि के अतीत पर आकर रूक गयी।

वत्स ! मैं पृथ्वीतिलकपुर के अधिपति पृथ्वीपाल राजा का पुत्र हूँ। मेरा नाम गुणाकर था।

गुरु-मुख से मैंने जाना कि यह शरीर क्षणभंगुर है। सारे सुख पानी के बुलबुले के समान अस्थिर हैं।

वैराग्य जगा, भावनाएँ प्रबल बनी और दीक्षा लेकर तपोमय जीवन जीने लगा। पूर्वकर्मोदयवशात् नीरस और रूक्ष आहार लेने से कुष्ठ रोग हो गया।

उपचार किये पर रोगोपशमन नहीं हुआ। आखिर गुर्वाज्ञा लेकर संलेखना व्रत धारा और समाधिपूर्वक शरीर-त्याग के लक्ष्य से यहाँ आत्मस्थ हो गया।

शनैः शनैः अशाता वेदनीय कर्म का प्रभाव कम हुआ। तुम्हारा संयोग मिला और आज मैं परम शाता में हूँ।

देखो! यह संसार जन्म-मरण की पीड़ाओं से भरा है। न रहने योग्य है, न भोगने योग्य है ये कर्मों से भरी दुनिया। जितना जल्दी हो, इसे त्याग कर जन से जिनपति बन जाओ। तुम मेरे बाह्य रोग मुक्ति में निमित्त बने, मैं आन्तरिक रोग-मुक्ति हेतु सहायक बनना चाहता हूँ। देशना क्या थी जैसे अमृत का दिव्य झरणा। उस अमीवर्षा में चारित्र-मोहनीय के पाप धुल गये और आत्मा चारित्र के शृंगार से सज गयी।

संयम का निरतिचार परिपालन करते हुए छहों मित्र द्वादशम देवलोक में देव बने।

वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र की पुष्कलावती विजय में उत्पन्न हुए। पूर्वभव की प्रीति के कारण पाँच मित्र राजा वज्रसेन के घर उत्पन्न हुए। उनका नाम रखा गया व्रजनाभ, बाहु, सुबाहु, पीठ एवं महापीठ। केशव ने अन्य राजा के घर जन्म लेकर सुयश नाम पाया।

पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण उनमें प्रगाढ़ प्रीति का भाव जगा। वे हिलमिलकर स्नेह की पौध का संवर्द्धन करते रहे। इधर ढलते जीवन के संध्याकाल में महाराजा वज्रसेन की आत्मा में वैराग्य के बीज अंकुरित हुए।

राजपाट त्यागा.....संसार से मुख मोड़ा और घोर-कठोर संयम साधना से विपुल कर्म निर्जरा करने लगे। चारों घाती कर्मों का सर्वथा क्षय कर तीर्थंकरत्व को उपलब्ध हुए।

भूतल को परम पावन करते हुए तीर्थंकर वज्रसेन स्वामी पुण्डरिकगिणी नगरी में पहुँचे।

देशना सुनने के लिये छहों मित्र समवसरण में पहुँचे। पहली देशना ही उनके जागरण की उद्घोषणा बन गयी। छहों मित्रों ने वंदना कर विनंती की-प्रभो! आपके मुखारविन्द से झरती अमृत की सुगंध को पाकर हम धन्य-धन्य हो गये हैं। हम आपकी अमृतमयी सन्निधि में आत्म-शान्ति की निधि पाना चाहते हैं। हमें दीक्षा देकर उपकृत करें।

वत्स! तुम्हारी भावनाएँ अत्युत्तम हैं। शुभस्य शीघ्रम् ! प्रभु ने छहों मित्रों को दीक्षित कर दिया।

वे अपनी अर्हता, रुचि और प्रज्ञा के अनुरूप अपने-अपने संयम-क्षेत्र में गति पकड़ने लगे।

मुनि वज्रनाभ का प्रशासनिक-कौशल अनुपम था। वे संघ के नायक ही नहीं, स्वयं के उन्नायक भी बने। संघ-प्रभावना, आत्म-साधना और तपाराधना से महान् कर्म-निर्जरा कर उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का पुण्योपार्जन किया और तीसरे भव में ऋषभदेव के रूप में इस धरा को धर्म से आलोकित किया। मुनि केशव की संयम-साधना भी कोई कम प्रशंसनीय नहीं थी। वे आयुष्य पूर्ण कर ऋषभ के घर पर पौत्र के रूप में उत्पन्न हुए और अक्षय तृतीया को दादा ऋषभ मुनि को इक्षुरस दान देकर श्रेयांसकुमार के रूप में प्रसिद्ध हुए।

बाहु-सुबाहु, दोनों ने अपने आपको विशेष रूप से वेयावच्च की साधना में संयोजित किया। किसी ग्लान, तपस्वी को देखा नहीं और उनकी सेवा-सुश्रुषा में उपस्थित हुए नहीं। शिरोवेदना, उदर वेदना, किसी भी शारीरिक व्याधि में समाधि प्रदान करने में उनकी प्रसन्नता कई गुणा बढ़ जाती। उनकी आत्मा इतनी अधिक वेयावच्च प्रेमी बनी कि लघुनीति, बड़ीनीति परठने में भी कोई संकोच अथवा घृणा का भाव नहीं आता।

तपस्वी के तप के प्रति अहोभाव!

आचार्य की अनुपम सेवा-साधना!

उपाध्याय के श्रुत के प्रति आदर-भाव!

स्वाध्यायी मुनि के प्रति उछलती प्रेम-धारा !

ओह! ये मुनि सेवा का अनुपम लाभ देकर मुझे भव-सिंधु से तार-उबार रहे हैं। जैसे कृतज्ञता और अनुमोदना से उनका रोम-रोम खिल उठता। इधर पीठ-महापीठ मुनि ने अपनी समस्त क्षमताओं को ज्ञान-आराधना में नियोजित किया।

उनकी ज्ञान-किरणें शुक्ल पक्ष की शुभ्र चाँदनी की भाँति अवनितल को पावन करने लगी। उनमें ज्ञान साधना की पवित्र ऊँचाइयाँ तो थी पर वे उपबृंहणा नहीं कर पाते थे।

इतना ही नहीं, बाहु-सुबाहु मुनि की प्रशंसा कानों में तीर की भाँति चुभती थी। यदा-कदा वे गणनायक पर पक्षपात का आरोप भी लगा देते।

जब देखो तब गुरु महाराज इन दोनों मुनियों की प्रशंसा करते रहते हैं। क्या हम विनय और वेयावच्च में कम हैं?

मन की दुर्भावना ! विचारों की क्लिष्टता ! अध्यवसायों की मलिनता !

वे दोनों यद्यपि ज्ञान-साधना और चारित्र की साधना से समृद्ध थे पर वेयावच्च प्रेमी मुनियों के प्रति ईर्ष्या, उन्हें

देखकर कुढना-चिढना एक तरह से स्वर्ण पात्र में पीतल की मेख के समान था। ज्ञान-साधना से विपुल कर्म निर्जरा की पर ईर्ष्या एवं आचार्य प्रत्यनीकता के कारण स्त्री वेद का बंध किया।

छहों मित्र आयुष्य कर्म पूर्णता के पश्चात् स्वर्गगामी हुए, तदुपरान्त-

(I) गण की व्यवस्थित सारणा-वारणा करके वज्रनाभ ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था, परिणामत: वे प्रथम तीर्थपति आदिनाथ बने।

(ii) बाहु-सुबाहु वैयावृत्य गुण के कारण पुण्यबंध कर महान् बल के स्वामी भरत व बाहुबली बने।

(iii) पीठ-महापीठ ने ईर्ष्या के कारण स्त्री-भव पाया और ब्राह्मी-सुन्दरी बने।

(iv) केशव कुमार धर्माराधना के प्रभाव से श्रेयांसकुमार बना।

(v) सामग्री प्रदान करने वाला वणिक् उसी भव में दीक्षा लेकर सर्वोच्च सिद्ध पद को उपलब्ध हुआ।

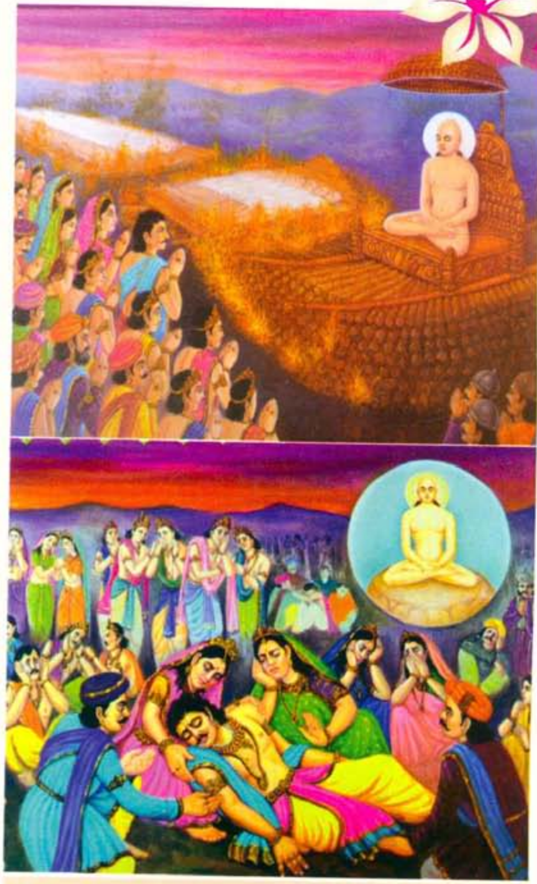

परमात्मा ऋषभदेव का निर्वाण और भरत चक्रवर्ती द्वारा आक्रन्दन।

सीलं वरं कुलाओ, कुलेण किं होइ विगयसीलेण ।
कमलाइ कद्दमे संभवंति, न हु हुंति मलिणाइं ।।

शील कुल से महान् और श्रेष्ठ है। शील से रहित उच्च कुल की प्राप्ति से क्या लाभ? कमल पंक में जन्म लेता है परन्तु मलिन नहीं होता, तथैव शीलवान् संसार में रहता हुआ भी कामभोगों में लिप्त नहीं होता ।

वज्जालग्ग - 8/6

नारी जाति का महत्त्व हर धर्म, पंथ, संप्रदाय में प्राचीन काल से रहा है।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' यह पंक्ति हिन्दु धर्म में नारी की महत्ता को अंकित करती है। जैन धर्म में जिस प्रकार तीर्थंकरों की माताएँ पूजनीया हैं, वैसे ही ईसाई धर्म में यीशु की माता मरियम को भी पूजनीया माना गया है।

इस्लाम और बौद्ध धर्म में भी नारी को आदरणीय स्थान प्राप्त है। निष्कर्षतः नारी सर्वदा और सर्वत्र श्रद्धास्पद रही है।

आज की नारी यदि विरासत से प्राप्त शील की संपदा, सत्य की सुन्दरता और संयम की सुवास का संरक्षण नहीं कर पायी तो यह उसके लिए बहुत बडा कलंक होगा ।

संबोधि की ज्योति

महासती राजीमती

- आर्यवर ! आप यह क्या कह रहे हैं ? क्या आपको अपनी अनुशासना, मर्यादा और पवित्रता का जरा भी बोध नहीं ? तुम कान खोलकर सुन लो। ये राजी न तो पहले कभी तुम्हारी हुई है, न अभी हो सकती है। संयम में जीना-मरना मेरा अटूट संकल्प है। कदाच् संयम की सुरक्षा के लिये प्राणों को न्यौछावर करना पड़े तो भी मैं हिचकिचाने वाली नहीं।
- मुने ! तुममें जरा भी विवेक बचा है कि नहीं ? इस तरह की याचना करते हुए लज्जा और संकोच से पाताल में चले जाओ तो भी आश्चर्य नहीं होगा।
- तुम्हें अच्छी तरह पता है कि उल्लू रात में नहीं देख पाता है पर कामभोग में अंधा बना हुआ व्यक्ति दिन में भी नहीं देख पाता है। कहीं तुम उल्लू से भी गये बीते तो नहीं ?

महासती राजीमती

ओह! यह विक्षेप कैसा? आते हुए रथ और बाराती रूक क्यों गये? क्यों बंद हो गया शहनाई-वादन और इत्र का छिड़काव? प्रश्नों के जाल में फँसी हुई राजीमती कहीं भी समाधान का तट नहीं पा रही थी।

कुछ क्षणों पहले चेहरे पर कुलाचें भरता गुलाबी रंग निस्तेज होने लगा था कि एक सखी दौड़ी-दौड़ी राजीमती के पास पहुँची और कहने लगी-तूंने कुछ सुना सखि !

नहीं ! क्या हुआ? राजीमती उतावली होकर बोली ।

सखी ने कहा-राजी ! नेमिकुमार स्वागत द्वार पर पहुँचने के पहले ही प्रत्यावर्तित हो गये। सुना है कि गिरनार पर्वत की कन्दराओं में चले गये हैं। यह बंधन उन्हें स्वीकार्य नहीं है। सुनते ही राजीमति के कोमल हृदय को गहरा आघात लगा। वह मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पड़ी । इर्द-गिर्द उपस्थित सारी सहेलियाँ घबरा गयी।

दो सखियाँ दौड़कर नृपति उग्रसेन के कक्ष में पहुँची और राजीमती की अस्वस्थता के समाचार दिये। राजा उग्रसेन की सांस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी।

क्षणमात्र का भी विलम्ब किये बिना वे राजीमती के कक्ष में पहुँचे, तब तक निश्चेष्ट राजीमती को कोई सखी हवा कर रही थी तो कोई शीतल जल बून्दों का छिड़काव ।

ज्यादा देर तक गंभीर स्थिति नहीं रही।

कुछ पलों में होश में आयी राजीमती नेमि ! नेमि ! पुकारने लगी।

राजीमती के आँसू पोंछती हुई माँ वात्सल्यसिक्त शब्दावली में बोली-अरी पगली! ऐसा क्या हो गया जो तूं इस तरह विलाप किये जा रही है। तुझे क्या पता, तेरी आँखों के ये आँसू अंगारें बनकर मेरे हृदय को किस प्रकार जख्मी कर रहे हैं! और

परम वैरागी अरिष्ट कुमार की बारात में उमड़ा जनसमूह!

मंगल गीतों की मधुर ध्वनि दुःखी पशुओं के आक्रन्दन में कहीं खो गयी और अरिष्ट प्रव्रज्या के चिन्तन में लीन हो गये!

तेरे पिताजी को देख! उनका मुख-तेज सूर्यग्रहण से ग्रस्त हो गया है ।

पर माँ ! ऐसा क्यों किया नेमि कुंवर ने ? पहले तो सपने दिखाए और अब आँखें ही छीन ली। मेरी माँग में सिन्दूर सजने से पहले ही उजड़ गया माँ....! कहती हुई राजीमती फफक पड़ी।

इतने में एक कृष्णवर्णीय परन्तु सौम्य आकृति राजीमती के मानस-धरातल पर उतर आयी।

अधरों पर सजी मुस्कान। चेहरे पर बिखरा संयम का माधुर्य देखकर जैसे राजीमति का खुद पर अधिकार न रहा। वह

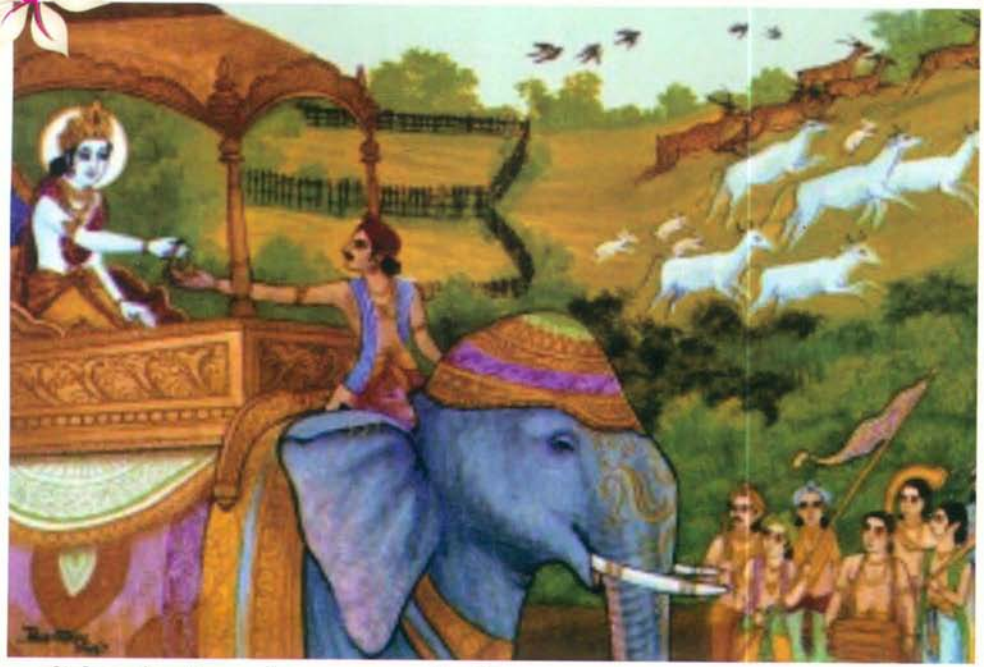

करूणा का संदेश

मुझे सारी दुनिया को करूणा का उपदेश देने के लिए आचरण का आचार्य बनना होगा!

खुल गये बंद द्वार। पशु आनंद से भरकर अपने मार्ग पर बढ़ गये और सहजयोगी नेमि निजत्व की राह पर बढ गये। गिरनार पर्वत पर चढ़ गये।

खींची चली गयी उसके अद्‌भुत आकर्षण में।

पल दो पल में मिश्री से मधुर शब्दावली कर्णकुहरों से आ टकरायी-राजी! महाभिनिष्क्रमण की पुण्य घड़ियों में यह विषाद कैसा! कैसी यह उदासी? ये पल तो बधाने के हैं। मैं तो चाहता हूँ कि पाँवों में घुंघरू बांधकर तुम जी भरकर नाचो, आनंद के गीत गाओ।

राजी ! मैं जानता हूँ कि मेरे इस कठोर निर्णय से तुम राजी नहीं हो। क्योंकि तुम मेरे संसार के मोह में डूबी हो, नव-नव भवों तक मेरी स्नेह-धारा में रची-पची हो ।

मैं जब देव बना, तुम देवी बनी।

मैं जब राजा बना, तूं मेरी रानी बनी।

मैं रोया तो तूं रोयी। मैं सोया तो तूं सोयी। मेरे हर सुख-दु:ख में अभिन्न सखा रही हो तुम।

पर राजी! यह राग संसारवर्धक है। रेत में से तेल निकले तो इस असार संसार से सार मिले। स्नेह के सूत्रों को छिटकाये बिना शाश्वत सुख की प्राप्ति असम्भव है।

मेरा जीवन बंधन से निर्बंध की ओर जाने के लिये है। विवाह का बंधन मुझे पहले से ही अस्वीकार्य था। संकोचशील स्वभाव के कारण मैं अपनी भावना को शब्द न दे सका तो क्या हुआ, पशुओं की मर्मभेदी चीत्कार ने मेरे मौन संकल्प को आचार के स्वर दिये।

किसी के प्राणों को स्वार्थ की वेदी पर होमकर स्वप्राणों का पोषण दैवी स्वभाव नहीं, दैत्य स्वभाव है।

राजी स्वगत हो कह उठी-अरिष्ट! तुमने पशुओं की तो पुकार सुनी और मेरा निवेदन अनसुना कर रहे हो।

राजी! सरासर झूठ बोल रही है तूं। अरे! अपने भीतर ईमानदारी से झाँककर देख तो सही।

क्या तेरे रोम-रोम में अरिष्ट नहीं है?

जब तेरे खून के कतरे-कतरे में अरिष्ट है, तब अपनी भिन्न अनुभूतियाँ और विभिन्न पगडंडियाँ क्यों रहे?

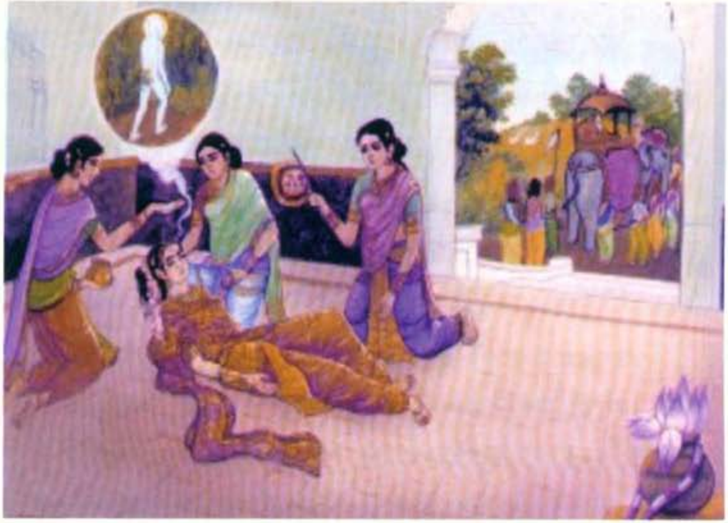

विवाह द्वार से रथ के प्रत्यावर्तित होते ही राजीमती के द्वारा मूर्च्छा की प्राप्ति।

जब नव भवों तक संसार साथ-साथ बांधा तो उसे तोड़ने की साधना भी साथ-साथ ही करनी है। क्या तूं नहीं जानती कि भोगों में जीने-मरने वाले तो कीड़े होते हैं। भोगों का जीवन तो पशुता का जीवन है। दिव्यता और भव्यता तो त्याग व विराग के ही अंग हैं। संयम-दीप की ज्योति में ही पशुत्व से प्रभुत्व की ओर बढ़ा जा सकता है।

राजी! नेमि तुमसे पूछ रहा है कि तुम क्यों खड़ी हो राग-द्वेष के कंटकवन में! विषय और कषाय के बंधनों को काटकर ही संयम के उपवन में प्रवेश पाया जा सकता है।

संयम खलु जीवनम्....संयम खलु उपवनम्....कहती हुई नेमि की आकृति अन्तर्धान हो गयी। राजी जब बाहर के संसार में लौटी, तब उसका मुखमंडल नूतन संकल्प के ओज और तेज से चमक रहा था। राजा उग्रसेन कह रहे थे-तनये! तुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। नेमि नहीं तो क्या हुआ? और भी कितने ही राजकुमार तुम्हारी 'हाँ' की प्रतीक्षा में खड़े हैं। फिर वह तो काला था। बीच में राजीमती बोल पड़ी-पिताजी! शायद आपको पता नहीं है। मैंने उनके रंग और रूप से मोह नहीं किया था। मेरा प्रेम दिखावटी या बनावटी नहीं है, वे मेरी सांसों में सुवास बनकर और जीवन की आश बनकर आये थे।

और रही अन्य राजकुमार की अभीप्सा, वह सच में तो क्या, सपने में भी नहीं कर सकती। 'सकृत कन्या दीयते' इस मंत्र को मैंने पढ़ा ही नहीं अपितु प्राणों में बसाया है। मुझे अरिष्ट के अतिरिक्त अन्य कोई न इष्ट है, न अभीष्ट है।

मेरा जीना भी उनके साथ है, और मरना भी उनके साथ है। राजीमती के इस कठोर निर्णय से उग्रसेन चौंक उठे।

वे बोले-लाडली! तूं कोमलांगी और संयम की कठोर पगडंडियाँ। तेरी ये मखमली....कोमल-कमनीय काया क्या कष्टों के कांटों से छलनी छलनी नहीं हो जाएगी?

माँ ने कहा-बेटी! संयम का मार्ग प्रतिकूलता का मार्ग है।

बावीस परीषहों को जीतना, अष्ट प्रवचन माता का पूर्ण आदर करना, प्रतिकूलता में भी हँसते हुए चलते जाना कोई सरल काम नहीं है। लोहे के चने चबाना अथवा तलवार की धार पर नंगे पाँव चलना आसान है पर संयम मार्ग में धीर-वीर-गम्भीर बनकर विघ्नों को पराजित करना दुष्कर है।

तुम एक बार गहराई से सोच लो। पर राजीमती का निर्णय अटूट था।

वह दिन भी आ गया जब राजीमती की अन्तर्यात्रा का प्रारम्भ हो गया।

अर्हत् नेमि के सानिध्य में उसकी साधना उत्तरोत्तर खिलने लगी।

और एक दिन घटनाक्रम यों बना कि राजीमती सहवर्ती श्रमणियों के साथ अर्हत् नेमि की वन्दना के लिये रैवताचल पर चढ रही थी कि मध्यमार्ग में भयंकर आंधी के साथ तीव्र वर्षा की रूकावट आ गयी। काली घटाएँ....ठंडी हवाएँ और खुलकर बरस रहे मेघकुमार देव।

कुछ पलों में चारों ओर पानी....पानी....हो गया। ऐसी स्थिति में संयम की सुरक्षा के लिये सुरक्षित स्थान की गवैषणा नितान्त अपेक्षित थी। और इस प्रयास में राजीमती सहवर्ती साध्वियों से कब....कैसे अलग हो गयी, इसका उसको भी बोध न रहा। इधर वर्षा का क्रम टूटा नहीं था। जल और विचारों के प्रवाह को चीरती हुई वह एक अंधेरी गुफा में प्रविष्ट हो गयी।

वह नहीं जानती थी कि जिस गुफा को सर्वथा जनशून्य मानकर निरावृत्त होकर वस्त्र सूखा रही है, वहाँ मुनि रथनेमि साधनारत है।

विद्युत् के प्रकाश में ज्योंहि रथनेमि की दृष्टि राजीमती के कायिक वैभव पर पड़ी, उसका स्थिर मन चंचल अश्व की भाँति भागने लगा। वह मृदु शब्दों का जाल बिछाकर बोला-राजी! इधर आओ! सुनकर साध्वी राजीमती चौंकी। यहाँ कौन है? क्या यह गुफा सर्वथा जनरिक्त नहीं?

घोर अंधेरे में अपनी दृष्टि को थोड़ी पैनी बनाकर राजी चारों ओर देखने लगी। यह जानते उसे ज्यादा देर न लगी कि मुझे पुकारने वाला कोई ओर नहीं, अर्हत् नेमि प्रभु का अनुज रथनेमि है। उसकी देहयष्टि से हुए सही आंकलन ने उसे अतीत की भूमि पर खड़ा कर दिया और वह स्मृतियों के रथ पर सवार होकर अतीत की यात्रा करने लगी। प्रसंग अरिष्ट नेमि के दीक्षित होने के बाद का था।

राजी! तुम ये न सोचो कि अरिष्टनेमि के बिना तुम्हारा कोई नहीं। तुम्हें इस कदर चिन्तित होने की जरूरत नहीं है।

राजी इतनी ही बोली-'रथनेमि! मैं चिन्तित हूँ।' ऐसा तुम्हें किसने कहा? अरिष्ट का अभिनिष्क्रमण मेरे प्रतिक्रमण का अवसर है। मुझे लौटकर पुनः उस मोड़ पर पहुँचना है, जहाँ नेमि का वास और प्रकाश है।

राजीमती प्रतिपल जहाँ वैराग्य की वर्षा में भीग रही थी, वहीं रथनेमि भोगों की महाज्वाला में झुलस रहा था।

कभी राजीमती का सौम्य सौन्दर्य आँखों के आगे नाचता तो कभी उसके अंग-प्रत्यंग से टपकता लावण्य इस कदर बेचैन कर देता कि रातों की नींद कोसों दूर ठहर जाती।

रथनेमि के उपहार....मधुर वार्तालाप....सौजन्यशील व्यवहार का राजीमती पर कहीं कोई असर नहीं था। वह तो पद्मपत्र की भाँति सर्वथा निर्लिप्त और अनासक्त भाव से प्रव्रज्या की राह ताक रही थी। ऐसी स्थिति में क्या करूँ....क्या न करूँ ! कैसे राजीमती का प्रेम पाऊँ! ऐसे अनेक प्रश्नों के जाल में रथनेमि इस कदर उलझ गया, जिससे उबरने की कोई राह नजर नहीं आ रही थी।

कभी कभी आत्मा पुकार उठती-रथनेमि! राजुल को तूं भले ही दसों प्राणों से चाहे पर उसकी एक सांस में भी तेरी चाह नहीं जग सकेगी। वह अनासक्त योगिनी है, घर में भी संन्यासिनी है। संन्यास में भोग का न्यास कभी नहीं हो सकेगा।

रथनेमि जब तब अपने बेलगाम दौड़ते मन के रथ को थामने- रोकने का प्रयास करता पर वह ज्यादा उच्छृंखल हो भागने लगता। भोगों के पीछे भागते भागते उसकी नींद हराम हो जाती, आराम खो जाता। विचारों में तूफान आ जाता ।

अपने सदाचरण से बहुधा संकेत व संदेश देने पर भी जब रथनेमि का आचरण न बदला तो राजीमती ने अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा का प्रयोग किया। उसके सामने वमन करके उसे चाटने की बात कही।

रथनेमि थूं....थूं....करता हुआ बोला-अरे! तेरी बुद्धि सठिया गयी है या अरिष्ट की यादों में पगला गयी है, जो वमित पदार्थ के पुनर्पान की बात कर रही है।

राजीमती ने आखिर मन की बात कह डाली-रथनेमि! यदि वमित पदार्थ का पुनर्पान इष्ट नहीं है, तब अरिष्ट के द्वारा त्यक्ता और वमिता इस राजीमति की इच्छा क्यों? इस प्रकार का जीवन जीने से तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है। संबोध से प्रतिबुद्ध रथनेमि भोगों से विरक्त हो मोक्ष-मंजिल का यात्री बन गया।

पल दो पल अतीत के पृष्ठों को उलटती हुई राजीमती वर्तमान के धरातल पर आ खड़ी हुई।

आज की इन संकटग्रस्त घड़ियों में मुझे फिर वही पुराना पर गौरवपूर्ण अतीत दोहराना होगा। उसकी आँखें अपूर्व चमक

और संकल्प से भर गयी।

इतने में पाँवों की आहट उसके कानों से टकराई। राजीऽऽऽ ! उसने तुरन्त भीगे कपड़ों से अपने आपको आवृत्त कर लिया।

राजी! तुम्हारे यौवन की दिव्य दहलीज पर खड़ा है एक याचक! ये भीगा ठंडा ठंडा मौसम हमें जिन्दगी के आनंद को लूटने का संदेश दे रहा है। आओ ! इस अभिनव सन्देश को बधाते हुए हम इन पलों को अमर कर दें।

आर्यवर! आप यह क्या कह रहे हैं ! क्या आपको अपनी मर्यादा, अनुशासना और पवित्रता का जरा भी बोध नहीं रहा, जो इस प्रकार की अनुचित याचना कर रहे हो। तुम कान खोलकर सुन लो, ये राजी न तो पहले कभी तुम्हारी हुई है, न अभी हो सकती है।

संयम में जीना-मरना मेरा अटूट संकल्प है। कदाच् संयम-सुरक्षा के लिये प्राणों को न्यौछावर करना पड़े तो भी मैं हिचकिचाने वाली नहीं।

अरे सुन्दरी! यूँ क्यों तरसा रही हो मुझे। जैसे मोर बरसात की और चकोर चाँद की बेसब्री से प्रतीक्षा करता है, वैसे ही मैं तुम्हारा इंतजार कर रहा हूँ। अब दिल और सब्र नहीं रख सकता।

ये शब्द राजीमती के लिये खौलते तेल से कम नहीं थे। वह अच्छी तरह रथनेमि को लतेड़ती हुई बोली-मुने! तुममें जरा भी विवेक बचा है कि नहीं। इस तरह की बातें करते हुए लाज और शर्मिन्दगी से पाताल में चले जाओ तो भी आश्चर्य नहीं होगा। तुम्हें अच्छी तरह पता है कि उल्लू रात में नहीं देख सकता पर कामभोग में अंधा बना हुआ व्यक्ति दिन में भी नहीं देख पाता है। कहीं तुम उल्लू से गये बीते तो नहीं?

अरे प्रिये! कुएँ के पास पहुँचे हुए प्यासे को प्यासा लौटाने में कुएँ का ही अपयश और अप्रतिष्ठा है। मैं भी प्यासा हूँ तेरी महर नजर का और मीठी बातों का। तेरे सौन्दर्य और साहचर्य की सुवास पाने के लिये मैं तेरे द्वार पर खड़ा हूँ। आशा पूरी होगी या प्यासा ही लौटना होगा! बिना किसी संकोच के रथनेमि एक ही सांस में सारी बात कह गया।

आर्यपुत्र! क्या संयम का हीरा पाने के बाद भी भिखारी ही बने रहोगे? फिर इच्छाओं का अस्तित्व और भरोसा ही क्या है।

जैसे आज मेरी कामना जगी है, कल किसी और सौन्दर्य पर मन अटकेगा। इच्छाओं का वर्तुल ही ऐसा है, जो घुमाता तो बहुत हैं पर पहुँचाता कहीं भी नहीं।

पल भर सांस लेने के लिए रूकी राजीमती ने कथन को आगे बढ़ाना शुरू किया-मुनिवर! इस सब बातों के साथ तुम्हें इस तथ्य का भी बोध होना चाहिए कि मुनि होने के साथ-साथ तुम निष्कलंक, यशस्वी अंधकवृष्णि के पुत्ररत्न हो।

क्या तुम चाहते हो कि कुल की गौरवमयी परम्परा के कलंक बन जाओ। यदि तुम उस कुल की प्रतिष्ठा और मान नहीं बढ़ा सकते तो किंचिदपि न्यून करने का कोई अधिकार भी नहीं है। सुनकर जैसे रथनेमि को झटका लगा।

राजीमती का कथन अभी भी अविश्रान्त जारी था-मुनि रथनेमि! तुमने सर्पों के दो कुल सुने ही होंगे। गंधन कुल का सर्प वान्त विष को पुन: ग्रहण कर लेता है पर अगंधन कुल का सर्प वान्त विष का पुनर्पान करने की बजाय अग्निशरण होकर प्राण न्यौछावर कर देता है।

तो हमें भी अगंधन कुल का होना चाहिए। त्यक्त इच्छाओं-कामनाओं की कामना स्वप्न में भी न करें चाहे मृत्यु का वरण क्यों न करना पड़े। राजीमती के वचनांकुश से रथनेमि उसी प्रकार वश में आ गया जैसे चाबुक की मार से उच्छृंखल अश्व और मदोन्मत्त हाथी वश में आ जाता है। पश्चात्ताप से रथनेमि की आँखें भर आयी। वह राजीमती की अभिनन्दना में बोला-आर्यारत्ना!

तुम साध्वी नहीं, समय का एक अमिट हस्ताक्षर है। काल प्रवाह में उतार-चढ़ाव आएंगे पर तेरी यशोगाथा इतिहास के पन्नों पर सर्वदा चमकती रहेगी ।

आज गिरते हुए इस तुच्छ रथनेमि की आत्मा को थामकर अनहद उपकार किया है। तुम्हारी अनुपम वचनावली मेरे जीवन का दिव्य पाथेय बन गयी है।

फुहारें अभी भी वातावरण को भीगा भीगा बना रही थी पर कोहरा-अंधेरा छंट चुका था, मेघों का भी और मोह का भी।

राजीमती साधना के पथ पर उत्तरोत्तर तीव्र गति से छलांग लगाती हुई उस समुन्नत अवस्था को उपलब्ध कर गई, जहाँ न अवनति का भय है, न पतन की आशंका ।

अमृतमयी गंगा

महासती पद्मावती

राजन्! इस प्रकार मोह विह्वल होने की कोई जरूरत नहीं है। ममता और समता का संगम कभी नहीं हो सकता। मैं सकल राग से उपर उठकर जीने की साधना में प्रयत्नशील हूँ।

मैं तो इतना ही कहना चाहती हूँ कि इस अनावश्यक रक्तपात से निवृत्त हो जाओ, यह मेरे लिये परम संतोष और समाधि का सोपान बनेगा। अर्हत् धर्म की इससे बड़ी सेवा और पूजा और क्या होगी?

महासती पद्मावती

बाल्यावस्था की अनेक पगडंडियाँ पार करके करकण्डू यौवन की दहलीज पर खड़ा है। उसका चाण्डाल होना आश्चर्यकारी नहीं है, पर आँखों की चमक और लाक्षणिक शरीराकृति अवश्यमेव आश्चर्यकारी है।

वह श्मशान सम्बन्धी सारे उत्तरदायित्वों को पूर्ण को निष्ठा से निभा रहा है, इससे पिता के कन्धों का भार काफी हल्का हो गया है। लकड़ियों को व्यवस्थित रूप से रखना, श्मशान को स्वच्छ रखना, ये सारे उसके कर्त्तव्य हैं। उसकी कार्यनिष्ठा के कारण किसी को कोई शिकायत नहीं है।

एक दिन जब वह श्मशान में कार्यरत था, तब दो मुनिवरों का कार्यवशात् उस तरफ आना हुआ। ज्येष्ठ श्रमण बांसयष्टि विशेषज्ञ थे। उनकी आँखें अचानक श्मशान क्षेत्र में एक स्थान पर उगे बांस-बीड पर ठहरकर चमक उठी। वे मन ही मन कुछ बुदबुदाने लगे।

कनिष्ठ मुनि बोले-क्या बात है गुरुदेव? आपकी आँखों की चमक कैसे बढ़ गयी! बढ़ते कदम सहसा ठिठक क्यों गये?

ज्येष्ठ मुनि ने अंगुली से इशारा करते हुए कहा-मुने! वह बांस की लाठी अत्यन्त शुभ और प्रशस्त लक्षणों वाली है। जरा इसका वर्ण तो देखो! कितना सौम्य और आभान्वित। इसके बीच में कोई गांठ भी नहीं है।

लघु मुनि ने जिज्ञासु की भाव मुद्रा में पूछा-उसका कुछ फल भी तो होगा गुरुदेव!

हाँ ! हाँ ! मेरा ज्ञान-विज्ञान कहता है कि इसे धारण करने वाला राजा बनेगा। कहते हुए उन्होंने अपने पाँव गन्तव्य की ओर बढ़ा दिये।

यह सारा संवाद करकण्डु के कानों से जा टकराया-ओह! यह लाठी इतनी पुण्यकारी ! इसे धारण करके मुझे राजा बनना है। दु:ख और गरीबी के पतझड़ कटे, अब सुख का बसंत आया।

इतने में दृष्टिपथ से ओझल होते मुनि के कुछ शब्द कानों में पड़े-परन्तु वह लाठी थोड़ी छोटी है। चार अंगुल बड़ी होनी जरूरी है। करकण्डु ने सोचा-चलो, कोई बात नहीं। चार अंगुल बढ़ने में चार दिन लगेंगे, तब तक मुझे इसकी सुरक्षा के लिये पूरी तरह चौकन्ना रहना है।

मुनिद्वय का यह वार्तालाप जैसे करकण्डु ने सुना, वैसे ही पगडंडी से गुजरते एक ब्राह्मण ने भी सुना।

ओह! तो यह लाठी लाठी नहीं, कल्पतरू और चिन्तामणि है। राजपाट देने वाली यह लाठी किसी भी तरह मुझे प्राप्त करनी है। लोभाभिभूत होकर वह उसे काटने के लिये उद्यत हुआ कि सद्य कथित मुनि-वाक्य स्मृति पटल पर तैर गया-इस लाठी का धारक राजा बनेगा तो सही पर चार अंगुल से अधिक परिमाण को प्राप्त होने पर।

तो क्या करूँ? चिन्तन चक्र तीव्र गति से घूमने लगा। यकायक मानस-नभ में विचार-उद्योत हुआ-मैं इसे जमीन खोदकर प्राप्त कर लेता हूँ। लाठी चार अंगुल बड़ी होनी चाहिये, वह नीचे से हो तो क्या, और ऊपर से हो तो क्या ! सोचता हुआ वह अपने लक्ष्य में प्रवृत्त हो गया। कटती हुई उस दिव्य लाठी को देखकर करकण्डु की सांसें उखड़ने लगी। वह तीव्र गति से ब्राह्मण के पास जा पहुँचा।

नोक-झोंक तो होनी ही थी। बात बाहुबल परीक्षण तक जा पहुँची। ब्राह्मण की अपेक्षा करण्कडु ज्यादा शक्तिशाली था। उसने लाठी छीनकर अपने हक में ले ली। ब्राह्मण उस अनमोल निधि को भला हाथ से कैसे छिटकने देता! वह न्याय की गुहार लिये चंपापति के दरबार में पहुँचा। करकण्डु को राजदरबार में उपस्थित होने का आदेश

मिला। करकण्डु राजा के समक्ष उपस्थित हुआ। दधिवाहन ने पूछा- तुमने ब्राह्मण से लाठी क्यों छीनी?

करण्कडू बोला-राजन् ! लाठी मेरी है इसलिये....बीच में ही ब्राह्मण बोला-नहीं, नहीं महाराज ! यह सरासर झूठ बोल रहा है। लाठी बांस बीड से मैंने काटी और इसने मुझसे छीन ली।

करकण्डू बोला- राजन् ! बिल्कुल सही है। लाठी इसने काटी पर बांस बीड मेरे श्मशान की सीमा में उगा हुआ था अत: उस पर अधिकार मेरा बनता है।

राजा बोले-ठीक है, लाठी तुम्हारे सीमा क्षेत्र में उगी थी, अत: उस पर तुम्हारा अधिकार बनता है पर उदारता से तुम दे भी तो सकते हो।

ब्राह्मण बोला-महाराज ! मुझे दान की कोई अपेक्षा नहीं है। यह लाठी की किंमत ले ले, और लाठी मुझे दे दे। अथवा इसके बदले दो-चार दूसरी लाठियाँ ले ले।

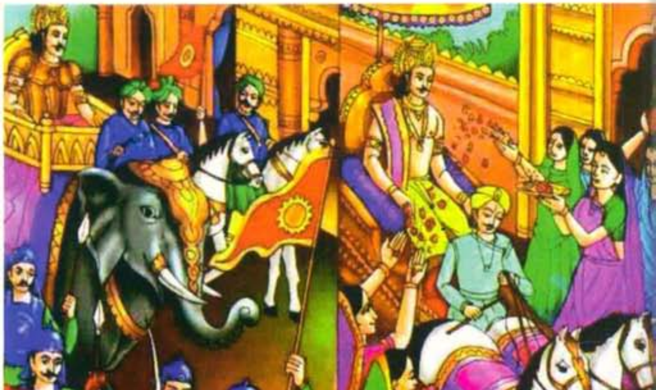

करकण्डु बोला-तुम दो-चार लाठी की बात करते हो, मैं तुम्हें दस-बीस देने के लिये तैयार हूँ।

वार्तालाप को दूसरी दिशा में मोड़ते हुए चंपापति ने कहा-करकण्डू ! तुम्हें इस लाठी से भला इतना लगाव क्यों? क्या इसके बदले दूसरी लाठी नहीं चल सकती?

राजन् ! आपसे भला क्या छुपाना? इस लाठी के बल पर मैं राज्य प्राप्त करूँगा और राजा बनूँगा ।

राजा को करकण्डू पर मन ही मन हँसी आयी। ठीक है लाठी तुम रख लो पर मेरी एक शर्त है कि जब तुम राजा बन जाओ तब

एक गाँव इसे भेंट में जरूर देना। करकण्डू ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

ब्राह्मण को न दिन में चैन था, न रात में नींद। जैसे किसी ने राजखजाना या राजसिंहासन दिखाकर पाताल में न पटक दिया हो। उसकी बेचैनी आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान का कारण बन गयी।

बुरे अध्यवसाय बुरी परिणति को खींचकर ले आते हैं, फिर भी जीव की यह महामूढ़ता ही है कि वह जान-बूझकर उन नश्वर पदार्थों के पीछे जीवन को बेकार-बेगार करता रहता है, जो न तो कभी उसके हो सकते हैं, न साथ चल सकते हैं, यहाँ तक कि दुर्गति से भी नहीं उबार सकते।

लोभ ब्राह्मण की चेतना पर इस कदर हावी हुआ कि रातों रात वह करकण्डू की हत्या का षड्यंत्र रच बैठा पर करकण्डू का पुण्य व आयुष्य उसके साथ था। हत्या की साजिश रचने वालों में से किसी को करकण्डू के प्रति इतनी दया आयी कि वह षड्यंत्र को छिपाकर न रख सका। उसने करकण्डू की हत्या का षडयंत्र करकण्डू के पिता के कानों तक पहुँचा दिया । अब करकण्डू का पिता भला चंपा में कैसे ठहरता। वह पत्नी व पुत्र के साथ चंपा को छोड़ अन्य देश की ओर बढ़ गया।

इधर कंचनपुर के नरेश का निधन हो चुका था। रिक्त राजसिंहासन को शीघ्र पूर्ण करना जरूरी था। पर पुत्रविहीन राजा के पद पर कौन अभिषिक्त हो।

राज-चयन की अपनी एक प्रक्रिया थी। एक अनुपम घोड़ी को सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित किया गया। उसे नगर में छोड़ गया। वह जिसके पास जाकर रूक जाए, वह नगर का भावी सम्राट् और प्रजा का पालक होगा।

जिस दिन यह प्रक्रिया होनी थी, उसी दिन करकण्डू का पिता सपरिवार कंचनपुर पहुँचा था और नगर के बाहर वृक्ष के तले आराम कर रहा था। घोड़ी घूमती-घूमती नगर से बाहर की ओर बढ़ने लगी। लोगों की आशा निराशा में ढलने लगी। क्या हमारा रक्षक, त्राता और स्वामी कोई नहीं होगा! कितने-कितने प्रश्न मन को भयभीत और चिंतित करने लगे। इतने में वह घोड़ी करकण्डू की ओर बढ़ी तथा प्रदक्षिणा देकर वहीं ठहर गयी।

करकण्डू का राज्याभिषेक

करकण्डू माता-पिता के साथ रथारूढ़ हुआ। उदास चेहरे खिल उठे। शहनाई वादन और ढोल-नगाड़ों से नगर का कोना-कोना नाच उठा। करकण्डू का ठाठ-बाट से राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।

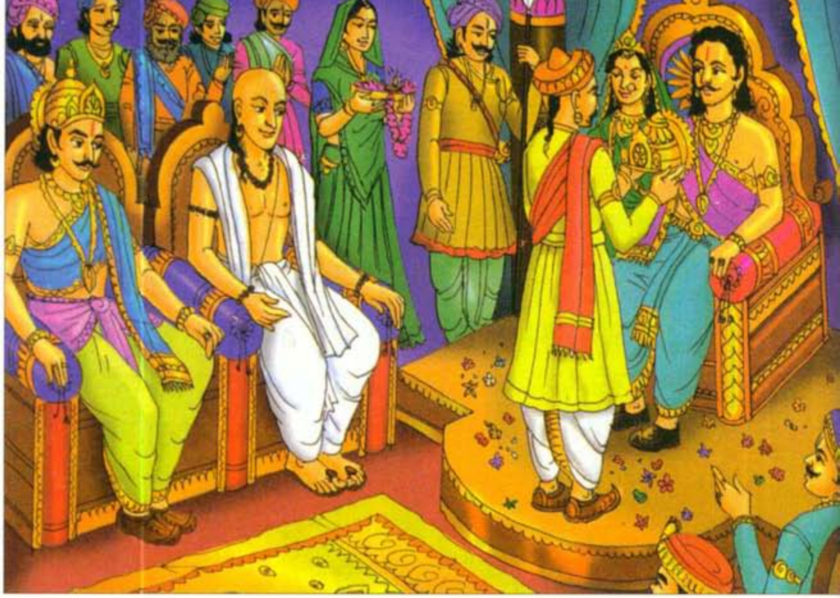

नभमण्डल जयनाद से गूंज उठा। मंत्रीवर आगे आए और करकण्डू का अभिनंदन करने लगे।

करकण्डू विस्मित था पर शीघ्र ही सारी बात समझ गया। उसने मन ही मन मुनिवर के प्रति अपनी भावभीनी कृतज्ञता व्यक्त की।

करकण्डू माता-पिता के साथ रथारूढ़ हुआ। उदास चेहरे खिल उठे। शहनाई वादन और ढोल-नगाड़ों से नगर का कोना-कोना नाच उठा। करकण्डू का ठाठ-बाट से राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।

उसी दिन ब्राह्मण के कानों तक सन्देश पहुँचा कि करकण्डू कंचनपुर का अधिपति बन गया है। वह अविलम्ब कंचनपुर के राजदरबार में उपस्थित हुआ। ब्राह्मण को देखते ही करकण्डू को दत्त-वचन याद हो आया।

बधाई और अभिनंदन के पश्चात् ब्राह्मण ने तमन्ना को अभिव्यक्त करते हुए कहा-राजन्! आपको अपना वचन तो याद है ना?

करकण्डू ने कहा-बिल्कुल याद है। सज्जन जान दे देते हैं पर जुबान से चलायमान नहीं होते। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप कौनसी आकांक्षा लेकर आये हैं। तत्पश्चात् मंत्रीवर की ओर गर्दन घुमाकर बोले-मंत्रीश्वर! ब्राह्मण महोदय को मैंने राजा बनने से पहले वादा किया था कि जब मैं राजा बन जाऊंगा, तब एक गाँव तुम्हें उपहार में दूंगा। मैं उस वचन-ऋण से यथाशीघ्र मुक्त होना चाहता हूँ। आप शीघ्र ही विप्रप्रवर की मनोकामना को पूर्ण करे। तदुपरान्त ब्राह्मण-उन्मुख होते हुए कहा-आप राज्य की दक्षिण दिशा में गाँव चाहते हैं या उत्तर....

बीच में ही बात को काटता हुआ ब्राह्मण बोला-नरेन्द्र! आपकी वचन प्रतिबद्धता और पालन में तत्परता को देखकर मेरा हृदय आनंद की बूंदों से छलक रहा है। आपके उज्ज्वल व्यक्तित्व को लाखों अभिवंदनाएँ। तत्क्षण बात को नयी दिशा देता हुआ वह बोला-राजन् ! मेरा आपसे एक हार्दिक निवेदन है कि मेरा घर जिस गाँव में है, वो ही गाँव भेंट में देने की कृपा करे।

करकण्डु बोला-जैसी आपकी इच्छा। आप तो बस इतना बता दीजिये कि आपका गाँव किस दिशा में है, कहाँ और किस गाँव में आपका गृहस्थान है?

ब्राह्मण बोला-राजन् ! मेरा गाँव आपके अधिकार क्षेत्र के बाहर चंपापुरी की सीमाओं में है।

तो क्या हुआ? आज ही मैं चंपा नरेश को संदेश भिजवाता हूँ।

करकण्डू का संदेश दधिवाहन को जंचा नहीं। उन्होंने तीखी व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया करते हुए अपना संदेश प्रेषित किया-करकण्डू ! तुम अभी राजनीति के नियमों से अनभिज्ञ हो। अपने अधिकारवर्ती क्षेत्र का परस्पर विनिमय करने का मंतव्य आपके अदूरदर्शी चिन्तन का परिणाम है। इस प्रकार का हास्यास्पद व्यवहार दो राजाओं में पहले न कभी

सम्राट् करकण्डू द्वारा प्रेषित संदेश का वाचन राजा दधिवाहन द्वारा

करकण्डू ! तुम अभी राजनीति के नियमों से अनभिज्ञ हो। अपने अधिकारवर्ती क्षेत्र का परस्पर विनिमय करने का मंतव्य तुम्हारे अदूरदर्शी चिन्तन का परिणाम है। इस प्रकार का हास्यास्पद व्यवहार दो राजाओं में पहले न कभी हुआ है, न कभी हो सकता है। मैं ब्राह्मण को तुम्हारे कथन पर गाँव प्रदान करूं और उतना ही क्षेत्र तुम्हारे राज्य से मांगू, यह मांग अनुचित व अव्यवहारिक ही नहीं, राजकीय प्रशासन शैली के सर्वथा विरूद्ध भी है।

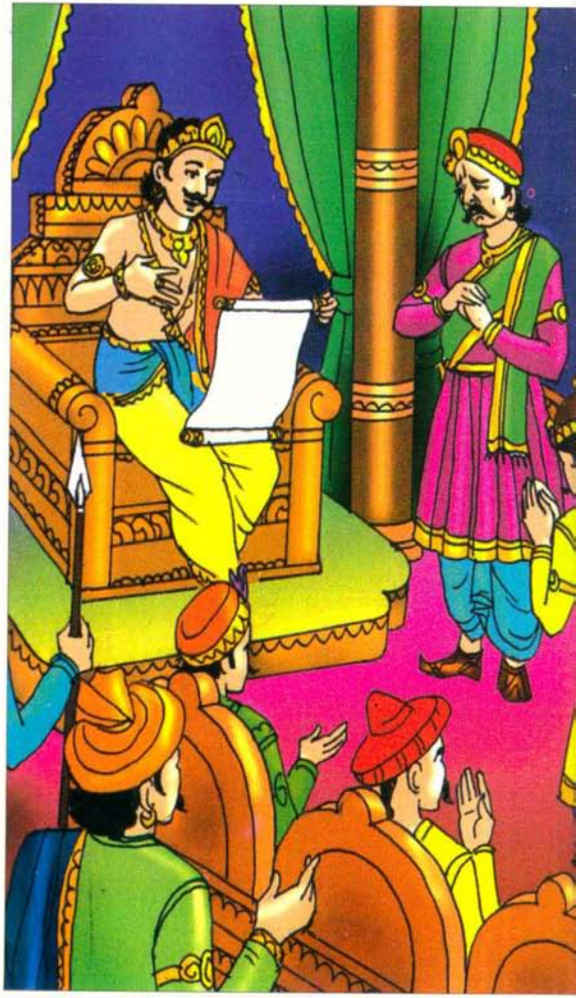

हुआ है, न कभी हो सकता है। मैं ब्राह्मण को तुम्हारे कथन पर गाँव प्रदान करूं और उतना ही क्षेत्र तुम्हारे राज्य से मांगू, यह मांग अनुचित व अव्यवहारिक ही नहीं, राजकीय प्रशासन शैली के सर्वथा विरूद्ध भी है।

हाँ ! गाँव मिल सकता है पर तुम्हें याचक के रूप में मुझसे निवेदन करना होगा। यह भी यदि सम्भव नहीं है तो रणभूमि में बाजूओं का दम तोलना होगा। ग्राम-प्राप्ति का तीसरा कोई उपाय नहीं है।

करकण्डू को दधिवाहन से इस प्रकार के कटाक्षपूर्ण प्रत्युत्तर की तनिक भी आशंका नहीं थी। अपमान और अवमानना से परिपूर्ण व्यवहार से वह न केवल आग बबूला हुआ अपितु उसकी चुनौती को स्वीकार कर युद्ध का शंखनाद कर दिया। घबराते-सकुचाते ब्राह्मण ने निवेदन भी किया कि-राजन् ! मेरी खातिर आपको इस प्रकार का खतरा उठाने की जरूरत नहीं है। गाँव की मुझे कोई अत्यन्त अपेक्षा नहीं है। मैं तो दोनों ही

परिस्थितियों में प्रसन्न हूँ चाहे ग्रामाधिपति बनूं अथवा न बनूं। इधर करकण्डु के लिये मान-अपमान की अपेक्षा वचन-प्रतिबद्धता का महत्त्व था।

करकण्डू ने दत्त-वचन के प्रति निष्ठा अभिव्यक्त करते हुए कहा-विप्रवर! बात न ग्राम की है, न जन्म-मृत्यु की। मेरे लिये अभी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है-वचन भंग के महापाप से बचना। प्रदत्त वचन का पालन करना हर व्यक्ति का धर्म है, चाहे वह राजा हो अथवा रंक। उसके लिये प्राणों को यदि बलिदान की वेदी पर होमना पड़े तो भी पीछे नहीं हटना, यह क्षात्र धर्म का गौरवपूर्ण सम्मान है। मैं नहीं चाहता कि आने वाली पीढ़ी कमजोर, कायर और वचन से मुकरने वाले के रूप में अंकित करते हुए मुझे धिक्कारे, मेरे नाम व काम पर थूं....थूं....करें।

पर महाराज! मेरा कोई दुराग्रह नहीं है कि मुझे मेरा ही गाँव मिले। आप वचन-प्रतिबद्धता के लिये अपने राज्य से ही कोई गाँव दे दें तो भी कोई आपत्ति नहीं होगी। आप चंपापति से टकराने की जोखिम मत उठाइए, यह मेरा सविनम्र निवेदन है।

तुम मेरे बाहुबल के संदर्भ में सशंकित हो तभी इतनी कमजोर बातें कर रहे हो। तुम निश्चिंत रहो। फिर खतरों से खेले बिना जिन्दगी का मजा भी क्या है?

ओह....! आदमी का प्रमत्तता, अज्ञानदशा और मोह की प्रबलता तो देखो कि वह भाई-भाई, पिता-पुत्र के बीच युद्ध का तनाव खड़ा कर देती है।

करकण्डु नहीं जानता कि समरभूमि में वह जिनसे भिड़ने-लड़ने जा रहा है, वे कोई और नहीं, उसके पूज्य पिताश्री है। चंपानरेश नहीं जानते कि जिसे वे अपनी भूमि का एक इंच भी देने से इंकार कर रहे हैं, वह कोई और नहीं, उन्हीं का वारिस है।

सेना सुसज्जित हो रही है।

तलवारें तैयार है शत्रु-शिरच्छेद के लिये।

धनुष-बाण में प्राण फूंके जा रहे हैं।

और भीतर में आवेग है....कषाय की ज्वालाएँ है, मान-अपमान का प्रश्न सता रहा है।

ओह....! छोटी सी आन के लिये कितने निर्दोष लोग मारे जाएंगे? धरा रक्तरंजित होगी....आकाश हाहाकार कर उठेगा। है कोई इस अज्ञानदशा से उबारने वाला। कोई है उसका त्राता, भ्राता और प्रेम का पाठ पढ़ाने वाली माता।

दो आँखें झांक रही है अतीत के गवाक्ष से। पिता-पुत्र एक-दूसरे से अनजाने हैं पर उनके संबंधों के सेतु पर खड़ी है साध्वी पद्मावती। यकायक उसके सम्मुख तैर गयी है बहुत सारी भूली-बिसरी यादें।

अरे! तुम्हारी मुखमुद्रा यों उदासी से भरी-भरी कैसे? हमेशा गुलाब की तरह खिले खिले रहने वाले चेहरे पर तनाव की ये लकीरें कैसी?

कैसी उदासी....कैसा तनाव। साश्चर्य पद्मावती बोली। दधिवाहन ने पद्मावती का हाथ खींचकर अपने पास बिठाते हुए कहा-प्रिये! क्या मैं इतना नादान हूँ कि तेरी अन्तर्व्यथा को तेरे चेहरे से न पढ़ सकूं। मैं पिछले काफी दिनों से देख रहा हूँ कि तुम उदास, थकी-हारी और रूग्ण दिख रही हो। तुम्हारा स्वास्थ्य बल और मुख की चमक भी लुप्त हो रही है। कहते हुए दधिवाहन के शब्द स्नेह की आर्द्रता में भीगे बिना न रहे। दो पल रूककर वे बोले-पद्मे ! अगर तुम अपनी चिंता का कारण नहीं कहोगी तो भला उसका निराकरण कैसे होगा? वे साग्रह बोले-देवी! नहीं कहोगी, तब तक मेरे अन्न-जल का परित्याग है। अब तो पद्मावती को चाहे-अनचाहे कहना ही था। वह जैसे तैसे साहस बटोरकर बोली-प्राणनाथ! पिछले एक माह से मेरे मानस-कक्ष में एक ही विचार कौंध रहा है कि राजसी वेशभूषा धारण करके मैं अपने आपको पुरूषाकार दूं। इसके साथ गजराज की अम्बाड़ी पर बैठकर नगर की प्राकृतिक सुषमा को निहारूं। और एक बात, आप अपने हाथों में छत्र लेकर मेरे समकक्ष बिराजे।

ओह! तो इतनी छोटी सी बात के लिये इतनी बड़ी चिंता ! प्राणप्रिये! इस संकोच में तुमने अपने शरीर को कितना कमजोर कर दिया। यदि तुम तत्क्षण यह बात कह देती तो न मुझे मानसिक कष्ट उठाना पड़ता, न गर्भस्थ शिशु पीड़ित होता! ठीक है, जब जागे तब सवेरा। अब जब तुमने मन की बात कह दी है तो कल का सूर्योदय तेरी गज-सवारी का अभिनंदन करेगा।

राज-निर्देश से शीघ्र ही सारी तैयारियाँ हो गयी। राजवेश में पद्मावती का तेज और ओज शतगुणित हो सभी को विस्मित कर रहा था। गज-सवारी चंपापुरी के मुख्य मार्ग से आगे बढ़ने लगी। जिन-जिन गलियों-चौराहों से यात्रा गुजरी, वे वे गलियाँ और चौराहें जनसमूह से आबाद हो गये। चंपापुरी के भविष्य की वर्धापना और अभिनंदना में भला कौन पीछे रहता। कुंकुम व इत्र का छिड़काव हुआ। पुष्पों की वर्षा ने नगर को महक से भर दिया।

नगर की परिक्रमा देता हुआ गज कदली वन में प्रविष्ट हुआ। कुछ क्षणों में मुस्कान मुश्किलों के बोझ तले दबने लगी। उन्मत्त हो गजराज इधर-उधर भागने लगा। विकट परिस्थिति का समुचित आंकलन कर महावत ने गज को नियंत्रित करने का प्रयत्न किया तो गज ने महावत को सूंड में पकड़कर आकाश में उछाल दिया।

अब स्थिति अधिक भयंकर थी। प्राणों के तार छलनी-छलनी हो रहे थे। दधिवाहन समझ चुके थे कि इस स्थिति से उबरना अति कठिन है। पद्मावती की भयभीत आँखों में आँखें डालकर एक वृक्ष की ओर संकेत करते हुए कहा-पद्मेऽऽऽ ! देख! सामने जो वृक्ष है, उसकी डाल को पकड़कर ही हम प्राण-रक्षा कर सकते हैं। ध्यान रखना, जैसे ही हाथी उसके पास पहुँचे, तुम उस शाखा को पकड़ लेना।

पद्मावती की आँखों में केवल और केवल भय की परछाईयाँ थी। वह समझ रही थी-यह सारा खेल जीवन और मृत्यु के बीच का है। वह संकल्पपूर्वक शाखा को पकड़ने को उद्यत होती, उससे पहले चिंघाडता गजराज उससे आगे निकल गया। दधिवाहन ने सतर्कता से शाखा को पकड़कर जीवन रक्षा कर ली, और अम्बाडी पर अकेली रह गयी पद्मावती।

एक तनाव....उद्विग्नता....संकट ने उसके चित्ततंत्र को हिलाकर रख दिया। गहन वन....वृक्षों की कतारें.... नदी-नाले पीछे छोड़ता हुआ गजराज अविश्रान्त भागा जा रहा था। चंपापुरी सैंकड़ों मील पीछे छूट गयी थी।

प्रहर-दो प्रहर की लम्बी अवधि व्यतीत होने के उपरान्त गज की गति सामान्य हुई। यह प्यास से आकुल-व्याकुल होता हुआ वह पानी की खोज में घुमने लगा। इसी तलाश में वह एक तालाब किनारे पहुँचा और प्यास बुझाने लगा।

इस अवसर को पद्मावती गंवाना नहीं चाहती थी, फिर किस्मत भी उसके साथ थी कि तालाब की पाल गजराज की पीठ के समानान्तर थी। जैसे ही गजराज पानी पीने को उद्यत हुआ कि पद्मावती सतर्कतापूर्वक अंबाडी से पाल पर कूद गयी। पद्मावती नीचे उतर तो गयी पर अब जाना कहाँ? उसके सामने मुश्किलें बहुत थी और वह नितान्त अकेली। कोमलांगी और अज्ञात भावी से भयभीत !

हिंस्र प्राणियों से हरा-भरा कानन। चिहुंदिशि डर! घुप्प अंधेरा! बिखरी कठिनाइयाँ! पर अब डरने से भी कोई फायदा न था। मुश्किलों के अंधेरे में एक दीप टिमटिमा रहा था-वह था पंच परमेष्ठी की शरण, आत्म-श्रद्धा और धर्म-साधना का। उसके कदम अनजानी राहों पर बढ़ गये। हृदय में न जीवन की अभीप्सा थी, न मृत्यु का खौफ था।

इसे श्रद्धा का चमत्कार ही समझना चाहिये कि बीहड़ वन में उसे एक तापस के दर्शन हुए। तापस स्वयं आश्चर्य में था कि एक स्त्री, जिसके मुख पर कोमलता, निर्मलता और पवित्रता तैर रही है, उसका बीहड़ वन में आगमन।

करूणा भरे मन से वह पद्मावती के करीब पहुँचा। पद्मावती अपरिचित पुरूष को देखकर घबरायी तो सही पर तापस की वत्सलता ने उसे शीघ्र ही भयमुक्त कर दिया।

भगिनी! लगता है तुम राह-भूली हो। इस घने अरण्य में कैसे आ गयी? स्नेहसिक्त शब्द-आलम्बन पाकर पद्मावती ने आप बीती कह सुनाई।

तापस से सान्त्वना देते हुए कहा-बहिन! तुम चलती-चलती थक गयी होगी और सुबह की भूखी-प्यासी होगी।

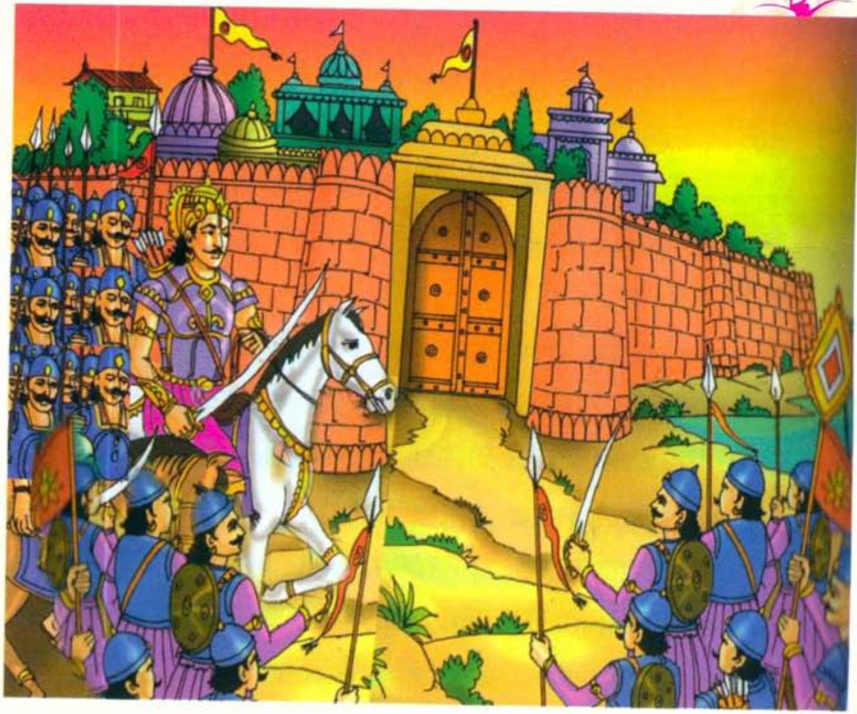

करकण्डू द्वारा युद्ध की संपूर्ण तैयारियों के साथ प्रस्थान

चलो, मेरे आश्रम में। जल और फल लेकर स्वस्थ बन जाओ। तुम्हें अब डरने की कोई जरूरत नहीं है। अटवी मैं पार करवा दूंगा।

पद्मावती सुबह की भूखी-प्यासी थी। जल की शीतलता ने थकान को हर लिया और फलों की मीठास ने आगामी यात्रा की ऊर्जा दी। इस यात्रा में सरलमना तापस उसके साथ था। काफी दूरी तय करने के उपरान्त जोता हुआ भू-भाग आ गया। तापस वहीं रूककर बोला-बहिना! अब मेरी मर्यादा आ गयी है। मैं जोती हुई भूमि पर नहीं चल सकता, फिर मार्गदर्शन की विशेष जरूरत भी नहीं है। तुम सीधी इसी राह पर चलते जाना। दंतपुर पहुँच जाओगी और चंपा वहाँ से कोई ज्यादा दूर नहीं है।

पद्मावती तापस की सहृदयता को कृतज्ञतापूर्वक नमन कर दंतपुर की ओर बढ़ चली। यद्यपि दंतपुर जितना करीब दिख रहा था, उतना था नहीं तथापि संध्या होते होते वह दंतपुर की सीमाओं में पहुँच गयी।

अपरिचित क्षेत्र....! अनजाने निवासियों के मध्य एक प्रवासी कहाँ जाएँ....क्या करें....किसके सामने दु:खड़ा रोये। किसी के समक्ष सहायता के लिये पहुँचे और गलत हाथ में पड़ जाए तो जीना दुष्कर हो जाये।

पद्मावती अच्छी तरह समझ रही थी कि अभी मेरा पुण्य-बल निर्बल है। फिर से आपत्ति के बादल मंडरा सकते हैं, तब क्यों न मैं निस्पृह श्रमण-श्रमणियों की सुखद शरण में पहुँच जाऊँ। दुनिया धोखा दे सकती है पर निर्ग्रन्थ नहीं।

इसी सोच में उसने साधु-साध्वियों की तलाश की। पुण्य योग से साध्वी भगवंत दंतपुर में बिराज रही थी। उनके सानिध्य में पहुँचकर पद्मावती को आत्मिक संतोष हुआ। श्रमणी के मुख से संसार की निस्सारता, संयम की रमणीयता, भोगों की क्षणभंगुरता और त्याग की विशिष्टता से परिपूर्ण प्रेरक वचनों को सुनकर पद्मावती का हृदय-पद्म विकस्वर हो उठा।

वैराग्यवासित हो वह संयम पथ की राह निहारने लगी। दीक्षित करने से पूर्व प्रवर्त्तिनी महोदया ने सारी जानकारी मांगी तो उसने सम्पूर्ण अतीत दोहरा दिया पर वैराग्य के शिखर पर खड़ी पद्मावती गर्भवती होने की बात कह न पायी। उसका चिंतन था कि यदि गर्भवती होने की बात कह दी तो दीक्षित नहीं हो पाऊंगी।

दीक्षित होने के बाद गर्भवती होने के स्वाभाविक संकेत प्रकट होने लगे। स्थिति स्वत: ऐसी बन गयी कि न चाहने पर भी पद्मावती को खुलासा करना पड़ा। उलाहना तो मिलना ही था। पर अब क्या हो सकता था। भीतर ही भीतर दिन बीतने लगे। खिसकते दिनों के साथ गर्भावधि पूर्णता के करीब थी।

एक-दो समझदार-श्रद्धाशील श्रावकों के कानों में बात डाली गयी। वे गंभीर, शासनभक्त और आज्ञा पालक थे। उनकी समुचित देखरेख में पद्मावती ने सुन्दर पुत्र को जन्म दिया।

पद्मावती यद्यपि साध्वी थी पर वीतराग नहीं, अंगजात के प्रति आसक्ति के सूक्ष्म धागों से उसकी भावनाएँ जुड़ी हुई थी। उसके मोह ने एक झूठ बोलने के लिये भी उकसा दिया।

वह समझती थी कि प्रतिदिन पुत्र मोह में बार-बार यहाँ आना उचित नहीं होगा, गुरुमाता क्या कहेगी। परंतु इस पुत्र-मोह ने उसे माया के लिये मजबूर किया। उसने पुत्र को रत्नकम्बल में लपेटा और नगर के बाहर श्मशान के पास

एकाकी छोड़कर वृक्ष की ओट में छिपकर खड़ी हो गयी।

शिशु रोने लगा और हुआ ऐसा कि उसकी रूदन ध्वनि श्मशान रक्षक के कानों में पड़ी। उस पुत्रहीन के लिये जैसे यह एक वरदान था। उसने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई पर कोई भी दिखा नहीं, तब उस अनाथ शिशु को अपना पुत्र मानकर गोदी में उठाया और अपने घर ले गया। इस प्रकार राजपुत्र का लालन-पालन चांडाल पुत्र के रूप में हुआ, निश्चित ही कर्म की लीलाएँ अद्‌भुत हैं, जिसकी कल्पना भी बुद्धि के बाहर की बात है।

पद्‌मावती के लिये अब पुत्र से मिलना आसान था। उसने श्मशान रक्षक की पत्नी से स्नेहिल सम्बन्ध बना लिये, जिससे वह जब-तब जाकर पुत्र को संभाल कर चली आती। पर उसने मातृत्व को प्रकट होने नहीं दिया । गुरु माता के द्वारा पुत्र प्रसव का पूछने पर 'मरा हुआ पैदा हुआ था, अत: छोड़ आयी।' कहकर समाधान कर दिया। कुछ समय बाद वह प्रवर्तिनी महोदया के साथ अन्यत्र विहार कर गयी।

लगभग दो दशक का समय अब अतीत हो चला है। पद्‌मावती ने कुछ दिन पहले ही सुना है कि चांडाल पुत्र कंचनपुर का राजा बन गया है और आज समाचार मिले हैं कि चंपानरेश दधिवाहन और चांडाल पुत्र के बीच एक गाँव को लेकर मतभेद हो गया है, उस कारण वे रण मैदान में आमने-सामने हो रहे हैं।

पद्‌मावती को लगा-अरे! चाण्डाल पुत्र की ऐसी शक्ति कि महाराज दधिवाहन से भिड़ जाये। नहीं....नहीं....यह संभव नहीं। मुझे तो लगता है, यह मेरा पुत्र है अन्यथा भुजाओं में क्षात्र बल कहाँ से आता। आखिर माता-पिता के गुण सन्तान में सक्रान्त होते ही हैं। यह महाराज दधिवाहन का औरस पुत्र होना चाहिए।

ओह! यथार्थ पर पड़ा परदा कितने अनर्थों को आमंत्रित करता है। पिता-पुत्र एक दूसरे के दुश्मन बने हैं, युद्ध करने के लिये तैयार हुए हैं, एक ही रक्त में ये कैसी विषाक्तता। मुझे निश्चय ही वहाँ जाना चाहिये। अन्यथा हजारों-लाखों बेकसूर प्राणियों के खून की नदियाँ बहेगी।

मुझे न पुत्र से मोह है, न महाराज से। यथार्थ को जीवन के धरातल पर उपस्थित कर युद्ध को आदि में ही विराम देना इस समय मेरा परम कर्त्तव्य है। फर्ज के धागे से बंधी पद्मावती गुरुमाता की आज्ञा प्राप्त कर युद्ध भूमि में पहुँची। युद्ध के शुरु होने में अल्पकाल ही बाकी था। दोनों की छावनियों में व्यूह-रचना पर मनन हो रहा था।

सबसे पहले साध्वी पद्मावती करकण्डू की छावनी में पहुँची। आरक्षकों से साध्वी के आगमन का संदेश पाकर वह बाहर आया।

साध्वी पद्मावती ने सौम्य मुस्कान से करकण्डू की आँखों में झांका । नयनों में झिलमिलाते तेज में अपनी और महाराज दधिवाहन की संयुक्त छवि देखकर उसे पक्का विश्वास हो गया कि यह मेरा पुत्र है।

करकण्डू साध्वीश्री के प्रथम दर्शन में आकृष्ट हुए बगैर न रहा। उनके चेहरे पर छाई सौम्यता मिश्रित तेजस्विता अद्भुत थी। दो पल के मौन को तोड़ती हुई साध्वी पद्मावती बोली-महाराज करकण्डू। मैं आपको विशेष सूचना देने आयी हूँ।

करकण्डू की आँखों में अनायास अचरज उभर आया। उसके संकेत को पाकर सहवर्ती मंत्री, सेनापति, सुरक्षाकर्मी एक ओर खिसक गये।

पद्मावती बोली-देखो! तुम जिसे अपने माता-पिता समझकर

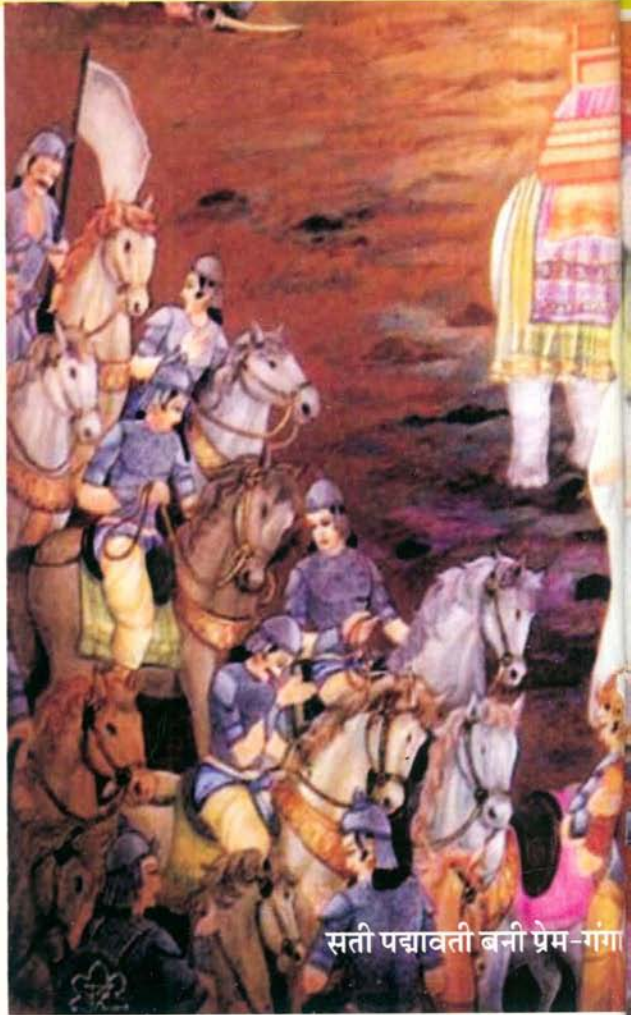

सती पद्मावती बनी प्रेम-गंगा

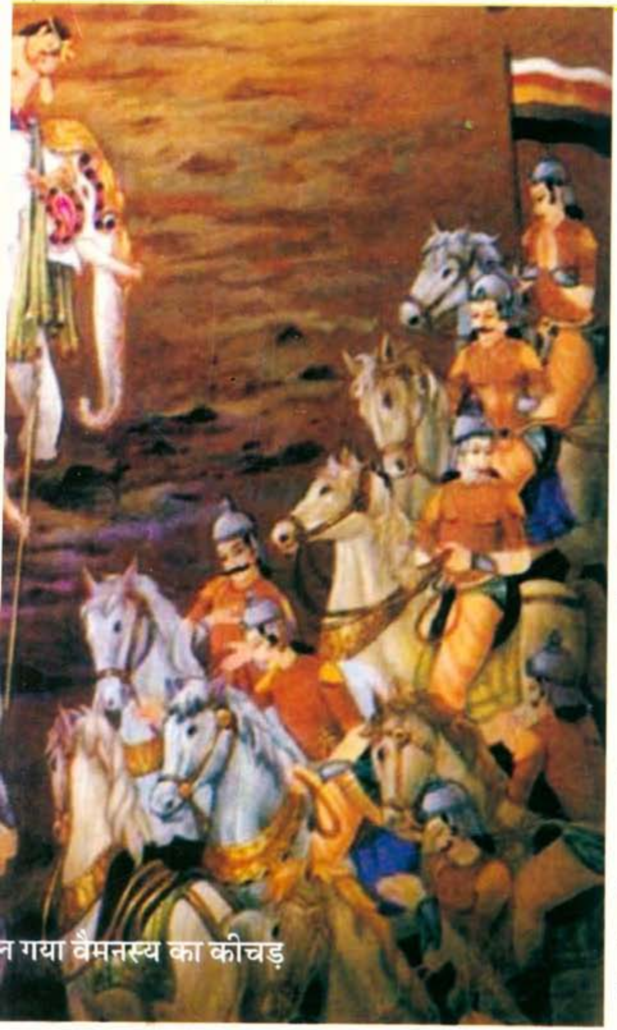

जी रहे हो, वे तुम्हारे जन्मदाता नहीं है, उन्होंने तुम्हारा केवल लालन-पालन किया है। वास्तविक माँ-बाप तो दूसरे हैं ।

करकण्डू को आश्चर्य जरूर हुआ पर अविश्वास नहीं क्योंकि उसे हार्दिक श्रद्धा थी कि जैन साधु-साध्वी मृषावाद नहीं करते हैं। फिर उसने प्रशस्त लाठी से राजा बनने का प्रत्यक्ष चमत्कार देखा ही था।

जिज्ञासा से छलकती शब्दावली में करकण्डू ने पूछा-तो फिर मेरे वास्तविक माँ-बाप कौन हैं?

रहस्य को अनावृत्त करती हुई पद्मावती बोली-महाराज दधिवाहन, जिनके साथ तुम युद्ध करने के लिये तत्पर हुए हो, वे तुम्हारे पिता हैं।

उष्ण उसास छोड़ता हुआ करकण्डू बोला-और मेरी माँ!

मैं, साध्वी पद्मावती तुम्हारी माँ हूँ। पद्मावती एक सांस में ही कह गयी।

पहला क्षण करकण्डु के लिये अविश्वास से भरा था पर दूसरा क्षण श्रद्धा और विश्वसनीयता से परिपूर्ण था। तत्क्षण वह दो कदम आगे बढा । उसके हाथ जुड़ गये, सिर झुक गया, श्रद्धा से आँखें नम हो गयी।

माँ! माँ! मैं तुम्हें अब कहीं नहीं जाने दूंगा। तुम्हारी गोद में दुबककर जीना है मुझे।

पद्मावती बोली-करकण्डू! तेरी और मेरी दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं। मैं भिक्षुणी और तूं सम्राट्! तेरा रागपूर्ण जीवन, मैं वीतरागता की साधिका। तुम पिता-पुत्र में सम्बन्धों की अज्ञात स्थिति में युद्ध हो रहा है। बस! इस रक्तपात को रोकने के लिये ही मैं आयी हूँ। मेरा कार्य पूरा हुआ।

पर माँ! मैं तुम्हारे चरणों का चाकर हूँ। कोई तो सेवा का अवसर दो। यूं छोड़कर न जाओ।

करकण्डू! ममता और समता का संगम नहीं हो सकता। तुम इस रक्तपात से ऊपर उठ जाओ, यही मेरी पवित्र पूजा और सच्ची सेवा है, इसी में मान-सम्मान का गौरवगान है।

पर माँ! मैं वचन से बंधा हुआ हूँ। एक तरफ तेरा आदेश है, दूसरी ओर दत्त वचन की प्रतिबद्धता। क्या करूँ? तुम्हें अनदेखा करूं तो आज्ञा भंग का पाप लगेगा और वचन को भूला दूं तो ब्राह्मण का अपराधी हो जाऊँगा।

पद्मावती निश्‍चिंतता से बोली-करकण्डू! घबराने की जरूरत नहीं है। मैं अभी महाराज दधिवाहन से मिलती हूँ।

फिर उपदेश की शैली में बोली-धर्म जीवन का नंदनवन है। पाप करके अपने जीवन को कंटकवन मत बनाना। प्राण त्याग की स्थिति में भी धर्म का त्याग मत करना। अच्छा अब चलती हूँ। कहकर पद्मावती ने महाराज दधिवाहन की दिशा में अपने कदम बढ़ा दिये। युद्ध-शिविर में निर्ग्रन्थ श्रमणियों का आगमन जानकर दधिवाहन को आश्चर्य हुआ। वह उनकी अगवानी में बाहर आया। ज्योंहि पद्मावती को देखा, उसकी भाव विह्वलता चरमोत्कर्ष पर पहुँची गयी। पद्मावती....पद्मावती....कहते हुए आँखों से गंगा-जमुना बहने लगी। इस स्थिति में वह यहाँ तक संवेदित हुआ कि श्रावकोचित वंदन एवं विनय-व्यवहार भी विस्मृत कर गया। पद्मावती उपदेशात्मक अंदाज में बोली-राजन्! इस प्रकार मोह विह्वल होने की कोई जरूरत नहीं है। मैं सारे सम्बन्धों के राग के फीते पर त्याग की कैंची चला चुकी हूँ।

पर....आप....यहाँ....इस वेश में....इस प्रकार मिलोगी....इसका तो मुझे तनिक भी अंदाज नहीं था। मैं तो आपके

दर्शन का विश्वास तक खो बैठा था। आज तो जैसे तपते मरुस्थल में सावन बरसा। भूखे को षट्रस भोजन मिला। प्यासे को अमी-कलश मिला।

पद्मावती की आँखों में कहीं कोई राग की परछायी नहीं थी। दधिवाहन बोले-कितने वर्षों बाद आपको देख रहा हूँ। आखिर आप इस सन्मार्ग तक कैसे पहुँची? पद्मावती ने शाखा पकड़ न पाने से लगाकर कहना शुरू किया।

दधिवाहन कभी आतंक की धारा में भीगते तो कभी वैराग्य की धारा में। आश्चर्य, साधना, असारता, प्रियता, उदासी, कितनी कितनी धाराओं में भिगोती हुई कथा पुत्र जन्म तक पहुँची। उस समय दधिवाहन की आतुरता चरम सीमा पर पहुँच गयी। वे बीच में ही बोले-वह पुत्र अभी कहाँ और कैसा है?

राजन्! वह बताने के लिये ही तो मैं आपके यहाँ आयी हूँ।

तो फिर देर किस बात की है? जल्दी कहो। उसे जानने, देखने और सीने से लगाने को मेरा हृदय तरस रहा है।

पद्मावती ने प्रत्युत्तर दिये बिना ही प्रतिप्रश्न किया-महाराज! आप जिस करकण्डू के साथ युद्ध करने जा रहे हैं, क्या आप जानते हैं कि वह कौन है?

हाँ ! हाँ ! व्यग्रता से राजा बोला। क्यों नहीं, अच्छी तरह जानता हूँ कि वह एक चाण्डाल पुत्र है।

पद्मावती ने एक साथ रहस्य से परदा उठाते हुए कहा-राजन्! वह चाण्डाल पुत्र नहीं, राजपुत्र है, आपका अंगजात है।

महाराज अपने कानों सुनी बात पर विश्वास न कर सके। वे अचरज की शैली में बोले-वह कैसे? पद्मावती स्पष्टीकरण देती हुई बोली-राजन्! करकण्डू का लालन-पालन भले ही चाण्डाल दम्पत्ति ने किया हो, पर है तो वह आपका ही पुत्र। कहकर उसने शेष कथानक पूर्ण किया।

दधिवाहन के मन में अब विविध रूप थे। आश्चर्य, उत्साह, खेद, कृतज्ञता, वात्सल्य, प्रेम के कितने ही रंगों से

विचार रंग चुके थे। पद्मावती वृत्तांत का उपसंहार करती हुई बोली-राजन्! मैं सकल राग से ऊपर उठने की साधना में प्रयत्नशील हूँ। मेरी साधना का लक्ष्य सिद्धि को पाना है। आपको इस अनावश्यक रक्तपात से बचते हुए अर्हत् प्रणीत धर्म की उपासना करनी है। वह परम शरण, परम तारक है। इन शब्दों के साथ साध्वी पद्मावती प्रत्यावर्तित हो गयी।

दधिवाहन का मन प्रसन्नता से छलक रहा था। शत्रुता मित्रता से भी ऊपर उठकर वत्सलता में बदल रही थी।

उनके आदेशानुसार सेना वापस लौट गयी। प्रधानमंत्री के प्रश्न का समाधान दधिवाहन ने दिया। उसका रोम-रोम पुलकन से भर उठा। युद्ध की जगह स्वागत की तैयारियाँ की जाने लगी।

इधर करकण्डू भी द्वन्द्व में था। आखिर संस्कारों की धारा उसे क्षमायाचना के तट पर ले आयी। उसने निर्णय कर लिया कि मुझे अविनय का प्रायश्चित्त करना है।

वह सूर्योदय के साथ अकेला ही महाराज दधिवाहन की छावनी की ओर बढ़ चला। चंपापति स्वयं उसी दिशा में बढ़े चले आ रहे थे। वह निर्दोष बालक की भाँति दौड़ा और

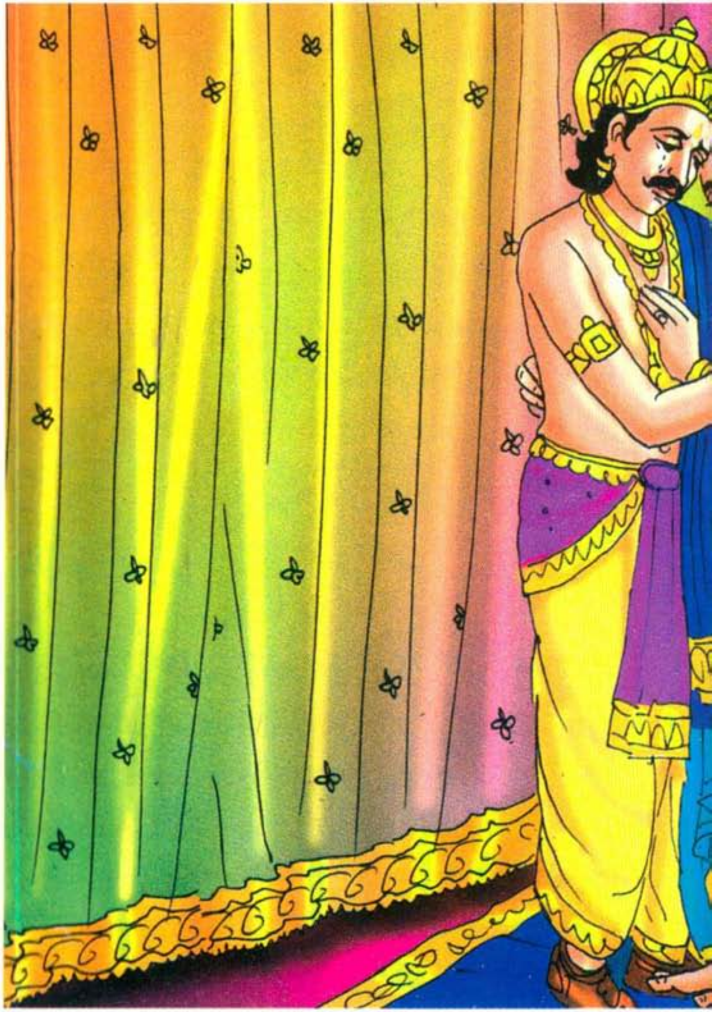

पिता-पुत्र का मिलन ओर आनंद का सर्जन

पिता के चरणों से लिपट गया। पिता ने उठाकर सीने से लगा लिया। अश्रु चौधार बहने लगे। पश्चात्ताप की पावन धारा में सारे गिले-शिकवे बह गये।

गजराज पर पिता-पुत्र सवार हुए। भव्य नगर प्रवेश हुआ। भावी नरेश के स्वागत में चंपापुरी सावन की घटा की भाँति उमड़ पड़ी। राजमार्ग संकड़े हो गये। गलियाँ गुलाल से रंग गयी। मन का कोना-कोना महक उठा। इत्र और फूलों की वर्षा से सभी ने वर्तमान एवं भविष्य की अभिनंदना की।

महलों में पहुँचकर करकण्डू को माँ का विरह असह्य प्रतीत होने लगा। अपनी भावना को अभिव्यक्ति देते हुए कहा-पिताश्री! माँ को चंपापुरी लाने के लिये मैं उनके चरणों में उपस्थित होना चाहता हूँ। दधिवाहन को लगा, करकण्डु ने जैसे मेरे मन की बात कह दी है। पर पुण्य उनके साथ न था। वे साध्वी पद्मावती से निवेदन करते, उससे पहले वे अनशन स्वीकार कर चुकी थी। उनकी पावनी काया से नि:सृत हो रहे शुभ्र परमाणुओं से

वायुमण्डल मघमघायमान और दैदीप्यमान हो गया।

चंपापति इन्तजार करते रहे पर पद्मावती का अनशन पूरा न हुआ। कैवल्य के तट पर पहुँचकर ही उनका मौन टूटा। अवशिष्ट आयु को भोगकर वे उसी भव में शाश्वत स्थिति को प्राप्त हो गयी।

पद्मावती के परिनिर्वाण का दीप दधिवाहन के अन्तर् को संयम के उजाले से भर गया। वे पुत्र को सत्ता समर्पित कर मुनि-मार्ग के महायात्री बन गये।

अमृतमयी गंगास्वरूपा साध्वी पद्मावती दो महाज्वालाओं को बुझाकर जन-जन के लिये अनुकरणीय-अनुसरणीय पदचिह्न अंकित कर गयी।

● दुर्योधन ! तेरे साम्राज्य की बात तो छोड़, यदि सुरेन्द्र स्वयं अपना सुरलोक मुझे समर्पित कर दे तब भी मैं अपने शील का सौदा नहीं करूँगी। बीहड़ वन में कष्टों की महाज्वालाओं का पान करना मुझे स्वीकार है पर अशील के शीतल जल से प्यास को बुझाना कभी भी स्वीकार्य नहीं होगा।

● ओह ! विवेक को ताक पर रखकर की गयी हँसी-दिल्लगी जी का जंजाल बन जाती है। शस्त्रों के घाव भर जाते हैं पर शब्दों के नहीं ! निस्सन्देह अपनी कटु शब्दावली के प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

एक पवित्र दीपशिखा

महासती द्रौपदी

महासती द्रौपदी

कांपिल्यपुर का भव्य राजभवन ! एक अनोखी चमक द्रुपद पुत्री के चेहरे पर छायी हुई है। पूरी नगरी तोरणद्वारों से नयी दुल्हन की भाँति सज चुकी है। कल ही राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर होने जा रहा है।

कितनी हलचलें....कितने अनुमान....कितने विचार सैंकड़ों, हजारों हृदयों में चक्र की भाँति चक्कर लगा रहे हैं।

राजकुमारी सखियों से घिरी हुई हैं...हाथों पर रच रही है मेहंदी...आँखों में एक आशा और हृदय में एक प्रकम्पन है।

न जाने कौन होगा मेरा प्राणेश्वर....! इस चर्चित स्वयंवर में मुझे पाने के लिये पहुँच रहे हैं....पहुँच गये हैं, युवराज, राजकुमार, राजा-महाराजा! सोचते सोचते द्रौपदी नयी दुनिया के सपनों में झुलने लगी है। उसकी रात करवटें बदलते बीती है।

दोराहे....चौराहे पर जहाँ देखो, वहाँ गोष्ठी चल रही है....। इधर शताधिक प्रत्याशी कांपिल्यपुर के अतिथि बने हुए हैं। उनकी आवभगत में कहीं कोई कमी नहीं है।

आशा-निराशा, हार-जीत, पता नहीं.....कितने कितने भावों से उनका हृदय मुखर हो रहा है। इष्ट की प्रार्थना करके वे शयन कर चुके हैं। आधी रात होते-होते मुख्य मार्ग भी सूनसान हो गये हैं। समय का पहिया अपनी गति से एक निश्चित गन्तव्य की ओर बढ़ता जा रहा है। कितनी ही संवेदनाओं, प्रवाहों, विचारों, हलचलों, प्रकम्पनों में रात व्यतीत हुई है।

पौ फटी। फिर नये सूरज ने नयी आशाओं का संचार किया। द्रौपदी ने जिनप्रतिमा के सम्मुख नमुत्थुणं के द्वारा वंदना की।

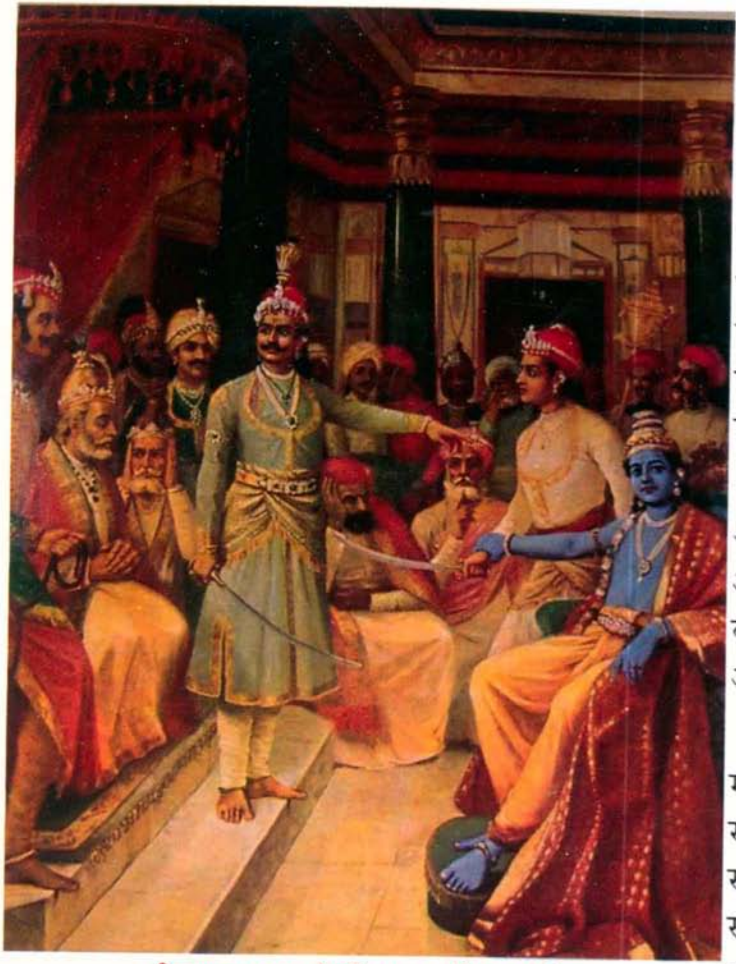

श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त हितशिक्षा पर दुर्योधन का कोप

युवराज, राजा और महाराजाओं ने सुन्दर परिधान धारण किये। अपने तलवार, भाला, धनुष आदि को संभाला।

प्रथम प्रहर के पूर्ण होते होते स्वयंवर की प्रारंभिक गतिविधियों का प्रारंभ हो गया। समस्त प्रत्याशियों ने ससम्मान अपना स्थान ग्रहण किया। द्रुपदराज ने अपनी ओजस्वी व शिष्टाचार से परिपूर्ण शब्द शैली से उनका सादर बहुमान करने के उपरान्त मूल प्रस्ताव को प्रस्तुत किया–

'राजकुमारी द्रौपदी, जो विश्व की अपने आप में अनिंद्य सुन्दरी है, इतना ही नहीं, वह शील, सदाचार और संस्कार की जीवंत प्रतिमा है। उसके जीवन–साथी के चयन का महोत्सव एक खुशी का अवसर है तो आशामिश्रित पराक्रम का संगम भी है।

उसी पराक्रमी, अनुपम साहसी व्यक्तित्व के गले में राजकुमारी द्रौपदी वरमाला आरोपित करेगी जो राधावेध की परीक्षा में खरा उतरेगा।' राधावेध के संदर्भ में जिज्ञासुओं के नयनों में तैरती जिज्ञासा को समाहित करते हुए द्रुपद बोले–आप देख रहे हैं कि महोत्सव मण्डप के ठीक मध्य में तेल से आपूर्ण पात्र

है, उसके ऊपर एक निश्चित दूरी पर सौ पुतलियाँ चक्कर लगा रही हैं जो कि तेल-कुण्ड में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो रही हैं। जो प्रत्याशी नीचे तेल कुण्ड पर दृष्टि एकाग्र करता हुआ उन पुतलियों में से राधा नामक पुतली का वेधन करेगा, वो ही राजकुमारी का हृदय हार बनेगा।

अनेक राजा आए-गये पर कोई भी राधावेध नहीं कर पाया। दुर्योधन भी प्रत्याशियों की पंक्ति में विराजमान था। अहंकार की रेखाएँ उसके चेहरे पर स्पष्टतया नाच रही थी। क्रमशः उसका क्रम भी आया। मूंछों पर ताव देता हुआ वह उठा पर दूसरे ही पल उसका उत्साह ठण्डा पड़ गया। राधावेध में उसे करारी हार का सामना करना पड़ा। इसी क्रम में पाँच पाण्डवों में से बेजोड़ धनुर्धर अर्जुन की बारी आयी।

उसने द्रुपदराज को प्रणाम किया। ज्येष्ठ बंधुद्वय युधिष्ठिर व भीम का

धनुर्धर अर्जुन द्वारा राधावेध की परीक्षा

आशीर्वाद लिया। नकुल-सहदेव की शुभकामनाएँ झेली। सधी चाल से तेल कुण्ड के पास पहुँचा। इष्ट देव का स्मरण किया। वातावरण स्तब्ध हो गया।

अर्जुन अपनी सफलता के प्रति सर्वथा निश्शंक था। एकाग्र दृष्टि....स्थिर हृदय....विश्वास से भरपूर मन। सभा में उपस्थित मन आशा-निराशा, आस्था-संदेह जैसे भावों के घेरे में थे तब अर्जुन ने आशा, आस्था और एकाग्रता को साधते हुए राधा नामक पुतली की आँख की ओर बाण चला दिया। दूसरे ही पल बाण ने लक्षित का वेधन कर लिया।

धनु-साधना सफलकाम हुई।

वर्षों की मेहनत जैसे आज कृतकृत्य हुई।

सभा मण्डप में विराजमान हजारों व्यक्ति जय जयकार कर उठे। 'पाण्डुपुत्र राजकुमार अर्जुन की जय हो।'

यद्यपि अर्जुन का यह अनुपम सफल कदम दुर्योधन को सर्वथा अप्रिय लग रहा था तथापि उसके विरूद्ध कोई भी कार्यवाही करने में वह सर्वथा असक्षम था। सखियों से घिरी राजकुमारी द्रौपदी ने अर्जुन की दिशा में कदम बढ़ा दिये।

गंभीर चाल....झुके नयन....लरजते होंठ। निकटस्थ सखी के कर में स्थित पुष्पथाल में से वरमाला उठायी। द्रौपदी ने एक पल के लिये अर्जुन को निहारा।

चमकता ललाट....विशाल वक्षस्थल....गौर बदन! प्राणेश्वर! आज मैं आपको वैसे ही समर्पित....रोम रोम से अर्पित हो रही हूँ जैसे समन्दर को नदियाँ....पानी को मीन....! इन्हीं भावों को नयनों से प्रकट करती हुई स्नेह और समर्पण पूरित हृदय से द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाल दी।

दूसरे ही पल जैसे एक चमत्कार हुआ। अर्जुन के गले में जैसी माला झूल रही थी, वैसी ही माला युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव के गले में भी झूलने लगी। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर सभी की आँखें फटी की फटी रह गयी। द्रुपद चिन्तातुर हो गये। कोई भी इसके रहस्य को समझ नहीं पाये, अर्जुन और द्रौपदी स्वयं अनभिज्ञ थे।

सौभाग्य से उसी समय अतीन्द्रिय ज्ञानी मुनिवर का राजसभा में प्रविष्ट होना हुआ।

वासुदेव श्रीकृष्ण ने समस्या को समाहित करना चाहा। मुनीन्द्र बोले-वासुदेव चिन्तित होने की कोई जरूरत नहीं है। यह पूर्व जन्म के कर्मों का फल है।

अर्जुन और द्रौपदी का विवाह

इन्द्रप्रस्थ के सभा भवन-उद्घाटनों के समारोह में पहुँची द्रौपदी कक्ष में मखमली शय्या पर बैठी थी। वातायन से प्रकृति की सुरम्य सुषमा का आनंद उठाती हुई अतीत के इन पृष्ठों को कब पढ़ने लगी, उसको खुद को ख्याल नहीं रहा। अतीत से उसकी कड़ी तब टूटी जब सम्मुख खड़े दूत के शब्द उसके कर्णपटल से टकराये-हस्तिनापुर की महारानीजी ! आपको संसद कक्ष में याद किया जा रहा है। आप शीघ्र पधारे।

द्रौपदी ने कहा- मैं राजस्वला हूँ, इसलिये नहीं आ सकती।

द्रौपदी के इंकार को सुनकर दुर्योधन गुस्से से भर गया। दासी होकर भी द्रौपदी का इस प्रकार का व्यवहार कि वह दुर्योधन के आदेश की अवमानना करें । उसने दुर्शासन को भेजा। द्रौपदी के स्पष्ट इन्कार को सुनकर दुर्शासन ने कहा-एक दासी की इतनी औकात कि वह युवराज को इंकार कर दें? वह उसकी खुली केशराशि को पकड़कर घसीटता हुआ राजसभा की ओर ले जाने लगा।

संसद कक्ष के द्वार पर उपस्थित द्रौपदी को देखकर दुर्योधन की आँखें एक उजास से भर गयी।

घोर सन्नाटा ! ऐसी निस्तब्धता कि सुई के गिरने की भी आवाज सुनायी दे जाये।

द्रुपदपुत्री की आँखें यकायक भवन का अवलोकन करने लगी। प्रथम पंक्ति में विराजमान पितामह भीष्म, द्रौणाचार्य, धृतराष्ट्र, विदुर आदि वय:स्थिर संसद की शोभा में वृद्धि कर रहे हैं। उसके ठीक पृष्ठ भाग में जो दूसरी पंक्ति है, उसमें दु:शासन, शकुनि, कर्ण आदि उपस्थित हैं। उसके पीछे की पंक्तियों में सेनापति, पुरोहित, खजांची आदि मंत्रीमण्डल के वरिष्ठ पदाधिकारी, छोटे-बड़े राज्यों के राजा, अन्य विशिष्ट व्यक्तित्व आसीन हैं, उनके एक तरफ युधिष्ठिर, भीम आदि पांचों कुन्तीपुत्र बैठे हैं और सर्वोच्च विशाल सिंहासन पर दुर्योधन अवस्थित है।

आतुरता से प्रतीक्षा कर रही दुर्योधन की आँखों को द्रौपदी के आते ही जैसे विश्राम मिला-आओ मेरे मन की मलिके! प्राणों के एक-एक तार में अपूर्व संगीत और माधुर्य को भरने वाली प्राणेश्वरी द्रौपदी का इस भव्य संसद कक्ष में भाव भरा स्वागत है। तुम्हें देखने को मेरे नयन तरस गये। अब तो जैसे तपती मरुभूमि में सावन की ठण्डी फुहार बरसी। अब विलम्ब न करो। शीघ्र ही मेरे सूने, फीके, सूखे जीवन को अपने सौन्दर्य, सुरभि और साहचर्य से नूतन उपवन में बदल दो।

दुर्योधन का अनर्गल प्रपाल सुनकर द्रौपदी के होंठ फड़कने लगे। आँखों में लालिमा उतर आयी। पहले ही संवाद में खरी फटकार लगाती हुई द्रौपदी बोली-कौरवकुलकलंक! तेरी निर्लज्जता तो पहले भी देखी-सुनी है पर आज तो तेरी बुद्धि का दीवाला ही निकल गया है, जो कुलवृद्धों की मर्यादा का उल्लंघन करता हुआ शराबी की तरह बकता जा रहा है।

याद रखना, ज्येष्ठ भातृजाया पर कुदृष्टि रखने वाला कुत्ते की मौत मरता है। उसके नाम पर आने वाली पीढ़ियाँ-शताब्दियाँ थूं थूं करती हुई नाम लेना भी पसंद नहीं करती है।

द्रौपदी की फटकार सुनकर दुर्योधन की मुट्ठियाँ भिंच गयी। द्रौपदी पुनः मुखर हुई-दुर्योधन ! तूं नहीं जानता कि परायी नारी पर आँख उठाना विनाश को आमन्त्रित करना है। क्या तुझे रावण की दुर्गति याद नहीं?

कुटिल हँसी हँसता हुआ दुर्योधन बोला-द्रौपदी! तूं सही कह रही है पर तूं मेरे लिये परायी नार नहीं, मेरी अपनी

प्रिया अतिप्रिया, सुप्रिया है।

भरी सभा में परायी नारी को अपना कहते तुझे संकोच भी कहाँ है? मुझ पर अधिकार जताने का और पाने का सामर्थ्य तो विश्व के अद्वितीय धनुर्धर अर्जुन में ही था। याद करो स्वयंवर के उन पलों को जब राधावेध के लिये तुमने अपनी किस्मत परखी थी पर तुझमें स्वयं की प्रतिभा को तोलने की भी बुद्धि कहाँ थी, अन्यथा भरी सभा में भारी जनमेदिनी के बीच अपनी इज्जत को यों धूमिल नहीं करता।

द्रौपदी ऽऽऽ ! दुर्योधन चीख उठा।

सच हमेशा ही कड़वा होता है गांधारीपुत्र ! तुम आज मुझ पर अधिकार जताते हो तो क्या उस दिन तुम्हारी बुद्धि घास चरने चली गयी थी या शक्ति वाष्प बनकर उड़ गयी थी, जो आज इस प्रकार की घिनौनी बात कर रहे हो।

एक-एक शब्द ने दुर्योधन के मन पर गहरा वार किया पर किसी भी तरह स्वयं को संभालता हुआ बोला-द्रौपदी ! अतीत एक शव से अधिक कुछ भी नहीं। उसे न तो सहेजा जाता है, न याद किया जाता है। स्वीकार्य तो हमेशा वर्तमान ही होता है और आज मैंने तुझे पा लिया है। तेरे और मेरे बीच में आने वाले हर रोड़े को समाप्त करने के लिये मैं कृतसंकल्प हूँ।

द्रौपदी सोचने लगी कि आखिर कारण क्या है जो कुलवृद्धों और

द्रौपदी की स्पष्टता पर कुपित दुर्योधन

पांच पतियों के बीच दुर्योधन इतनी अश्लीलता से पेश आ रहा है।

तनिक हैरानी भरे लहजे में वह बोली-यह तो बताओ दुर्योधन ! आखिर द्रौपदी तुम्हारी कब और कैसे हुई, जब मैं स्वप्न में भी तुम्हारी कामना नहीं करती।

अहं से उछलता हुआ दुर्योधन बोला-आज से और अभी से। जब से मैंने पाण्डुपुत्रों को द्युतक्रीड़ा में हराकर तुम्हें हासिल किया है, तब से तुम मेरे जीवन की निधि बन गयी हो।

तुम्हारे षड़यंत्र को मैं बखूबी जानती हूँ। द्रौपदी बोली।

ओहो! मेरी जीत को तुम कपट कहती हो। अरे! सैंकड़ों व्यक्तियों के बीच द्युत क्रीड़ा हुई। दिव्य पाशों के प्रभाव से मैं हर बार जीता, पाण्डुपुत्र हारे । धन, साम्राज्य को हारने के बाद वे तुम्हें भी हार बैठे।

हाँ! तुम इसे चालाकी समझो, धूर्तता या माया कहो पर सच सबके सामने है और यह दिन के उजाले की भाँति स्पष्ट है कि तुम मेरी हो चुकी हो। द्रौपदी की आँखों में जैसे अन्धेरा छाने लगा। धरती कांपती हुई प्रतीत होने लगी। तत्काल जिनेश्वर परमात्मा का ध्यान धरते हुए स्वयं को संभाला।

कुछ पल राजसभा में गहरी खामोशी छा गयी। द्रौपदी सम्पूर्ण घटनाक्रम को समझकर मनोमन कह उठी-ओह! आदमी जब-जब भोगों की तृष्णा का शिकार बनेगा, तब-तब अपमानजनक पराजय के कड़वे घूंट पीने ही पड़ेंगे ।

देखो तो सही ! लोभ की मार से पाण्डु पुत्र भी नहीं बच पाये। द्युतक्रीड़ा का परदा उनकी विवेक की आँख के आगे अंधेरा बिछा गया और वे सोच न सके। सारी सम्पदा को दाँव लगाने पर भी सीख न मिली, यहाँ तक कि एक खिलौना या स्वर्ण का टुकड़ा समझकर पांचाली को भी दाँव पर लगा बैठे। अरे ! इतना तो सोचते कि मुझमें भी जीव है, मैं सुख-दुःख के संवेदनों से मुक्त तो नहीं कि इस तरह एक खरीद ले और दूसरा बेच दे।

तभी उसकी सोच का आधार बदला-अरे ! मैं भी यह क्या सोच रही। मेरी पीड़ा से उन्हें अवश्य ही पीड़ा हो रही होगी। जब हमारे भविष्य पर खतरा मण्डरा रहा है, तब मुझे तनिक धैर्य, धर्म-आस्था, शील-दृढ़ता और आत्म-प्रज्ञा के

द्वारा आशाओं को जीवन्त रखना चाहिये।

अन्तर्जगत से बाह्य जगत में प्रविष्ट होती हुई द्रौपदी संयत शब्द शैली में अभिव्यक्त हुई-दुर्योधन ! यह सच है कि उन्होंने मुझे हारा है, पर मैंने उन्हें नहीं। फिर हार-जीत से ऊपर जीवन के कुछ नैतिक एवं मानवीय मूल्य भी तो होते होंगे।

द्रौपदी! आदर्शों के ढ़ोल पीटने से न तो जीवन चलता है, न सुख मिलता है। ये सब ग्रन्थों और सन्तों की बातें हैं। गृहस्थ जीवन में इनका कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता।

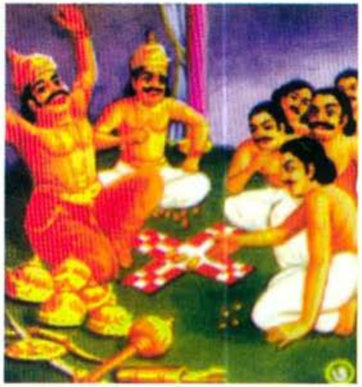
जुए में पाण्डवों की हार और दुर्योधन की जीत

दुर्योधन! तुम बिल्कुल गलत कह रहे हो। यदि पारस्परिक मर्यादा, लोक-लाज, विनय-व्यवहार और अनुशासन नहीं रहेगा तो न पति-पत्नी में पारस्परिक प्रेम और समर्पण हो सकता है, न पिता-पुत्र में विनय और अनुशासन ! इसलिये नैतिक नियम तो वह बाड है, जो संस्कारों की फसल को असंयम के आवारा पशुओं से बचाती है। द्रौपदी ने अपनी दलील प्रस्तुत की।

खैर! जो भी हो, पर मेरे मन में तुझे पाने की जो मुराद थी, वह पूरी हो गयी। अब तुम जल्दी से मेरे जीवन में बसंती बयार बनकर आओ। मेरा हृदय तुम्हें पाने को तरस रहा है।

दुर्योधन ! तुझ पर मोह और अविवेक का उन्माद छाया हुआ है। ठीक यही होगा कि तुम अपनी भाभी, हस्तिनापुर की महारानी से निश्छल स्नेह पाओ।

पर तुमने भी तो देवर के प्रति अपने औचित्य को न समझा, न निभाया। जरा याद करो अभिमन्यु के जन्मोत्सव के दिन को।

तत्क्षण द्रौपदी की आँखों के सामने घूम गया सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु का जन्म-बधाई उत्सव !

उस दिन की रौनक कुछ निराली....अनोखी! विशाल पैमाने पर आयोजित था वह भव्य समारोह।

राजभवन भी अनूठा! उसकी बनावट, शिल्प-सौन्दर्य भी सबसे जुदा। ऐसा विचित्र कि कोई कल्पना भी न कर सके। जहाँ स्थल दृष्टिगोचर हो रहा है, वहाँ जल है और जहाँ जल दृष्टिगत हो रहा है, वहाँ शुष्क स्थल है।

दुर्योधन भी उस कार्यक्रम में आमंत्रित था। उसे क्या पता था कि आज इस विचित्र भूल भूलैया में वह भ्रमित हो जायेगा।

उस भव्य भवन में प्रवेश किया तो लगा कि चारों ओर पानी ही पानी गिरा हुआ है। वस्त्र कहीं भीग न जाये, इसलिये हाथ से उसे ऊपर उठाया और आगे बढ़ने लगा। उसका आश्चर्य बढ़ गया क्योंकि दिख रहा था पानी, और था बिल्कुल शुष्क स्थल। यह कैसा आश्चर्य!

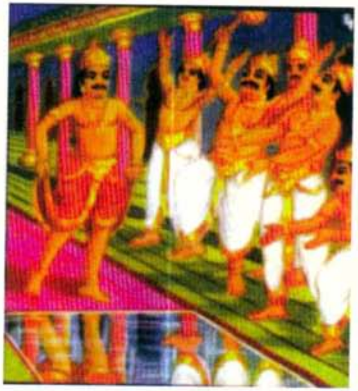
दुर्योधन द्वारा फिसलना

कुछ कदमों की दूरी पार की कि उसे लगा कि शुष्क स्थल आ गया। अपना धौतवस्त्र हाथ से छोड़कर चंचल भाव से चलने लगा कि पाँव फिसला और दुर्योधन पानी में गिर पड़ा। जैसे तैसे उठकर उसने अपने आपको संभाला।

बात यहीं पूरी नहीं हुई। हुआ यों कि पानी में गिरते दुर्योधन को देखकर सारी सभा हँस पड़ी, उससे भी ज्यादा अपमान तो तब हुआ, जब पाँच पतियों से घिरी पांचाली उन्मुक्त भाव से हँसती हुई व्यंग्य कस गयी-प्रियतम! देखो तो सही! अंधे का पुत्र अंधा ही होता है।

स्वकथित इस वाक्य के साथ ही द्रौपदी वर्तमान में आयी और गहरा निसास छोड़ती हुई सोचने लगी-ओह ! विवेक के अभाव में की गयी छोटी सी मजाक कैसे जी का जंजाल बन जाती है। वास्तव में अस्त्र-शस्त्र के घाव बहते समय के प्रवाह में इस कदर भर जाते हैं कि कभी कोई घाव नजर ही न आये पर मर्मभेदी शब्दों का घाव व्यक्ति चाहकर भी नहीं भर पाता है। निस्सन्देह मेरी कटु शब्दावली के प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

दो पल के मौन के बाद द्रौपदी बोली-देवरजी! इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरे शब्दों के तीर ने आपको घाव दिया है पर बड़े लोग हमेशा बड़े दिल वाले होते हैं। अपनी गलती के लिये मुझे अत्यन्त खेद है। मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। आप क्षमा करके बड़प्पन को प्रस्तुत कीजिये।

नहीं, कभी नहीं ऽऽऽ ! उस घाव का मरहम तेरा प्रेम भाव ही हो सकता है। कुछ भी हो जाये, तूं मेरी होकर रहेगी।

बस....बस, बन्द कर तेरी बकवास। क्यों अश्लील शब्दों से अपनी जुबान को और मेरे कर्णपटलों को गंदा कर रहा है। यह सोच कर चलना कि तूं मुझे हाथ भी नहीं लगा सकेगा। यदि हिम्मत की तो जलकर वहीं भस्म हो जायेगा।

द्रौपदीऽऽऽ! दुर्योधन गरज उठा। मैं अभी तेरे शील को खण्ड-खण्ड कर सकता हूँ। सत्ता की शक्ति के आगे शील की ताकत है ही क्या? जो तूं इतना झूठा दंभ भर रही है।

शील की ताकत का अनुमान विलास की गंदी नालियों के कीड़ें भला कैसे लगा पायेंगे। यह मेरी स्पष्ट चुनौती है कि मेरे शील-बल के सामने सत्ता की शक्ति

भीष्म द्वारा दुर्योधन को शिक्षा

बौनी ही ठहरेगी। कहते हुए द्रौपदी का चेहरा तेजस्विता से प्रदीप्त हो उठा।

तुझे अपने सतीत्व का इतना ही अभिमान है तो आज उसे चूर-चूर कर देने के लिये मैं कृतसंकल्प हूँ। दु:शासन! उठो मेरे प्यासे नयनों को इस अनुपम सौन्दर्य का रसपान करवाओ।

दु:शासन ने पूछा-क्या इस भरी सभा में ?

हाँ ! आज, अभी, इसी पल और इसी भरी सभा में। दु:शासन संकोच से सिमट गया। उसे निष्क्रिय देखकर दुर्योधन गरजा-क्या तूंने सुना नहीं। अब एक क्षण की भी प्रतीक्षा मेरे लिये असह्य है। यदि तूने जरा भी देरी की तो तेरा शिरच्छेद हो जायेगा।

डरता-कांपता दु:शासन पाँवों को घसीटता हुआ द्रौपदी की ओर बढ़ने लगा कि सुनायी दिया-दु:शासन! दुर्योधन तो कामांध हो गया है पर क्या तुझे भी कुल की मर्यादा का बोध नहीं रहा? तूं तो समझ, अन्यथा शील की अग्नि में तूं भी खत्म हो जायेगा।

एक तरफ कुआँ, एक तरफ खायी। दु:शासन के बढ़ते कदम एकदम जमीन से चिपक गये।

अरे ! वहाँ खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है? अब तनिक भी विलम्ब किया तो मुझसे बुरा कोई और नहीं होगा। दुर्योधन झल्लाता हुआ बोला।

द्रौपदी बुलन्द स्वर में मुखर हुई-अरे सभा में उपस्थित पूजनीय कुलवृद्धों ! आपकी आँखों के सामने इस प्रकार का घिनौना कृत्य हो रहा है और आप हाथ पर हाथ धरकर बैठे हो । मुझे तो समझ में ही नहीं आ रहा कि आप अपनी कुलवधू के साथ होते हुए अत्याचार को देखकर भी कैसे चुप्पी साध बैठे हैं?

सन्नाटा ! घोर सन्नाटा ! कहीं कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। सभी की आँखें शर्म से झुक गयी।

सर्वथा नि:स्पृह प्रतिक्रिया देखकर द्रौपदी पाण्डुपुत्रोन्मुख होकर गरज उठी-अरे पाण्डुपुत्रों! आपके समक्ष आपकी प्रिया की इज्जत लूटी जा रही है, तब भी आप प्रतिमावत् अक्रिय होकर बैठे हैं। आपने मुझे हारा तो क्या हुआ, अमर्यादा

और अनुशासनहीनता की भी कोई सीमा होती है। क्या आपका क्षात्रधर्म भी मेरी सुरक्षा के लिये आपको प्रेरित नहीं करता। आओ और अपने क्षात्रधर्म को निभाओ।

द्रौपदी का हार्दिक निवेदन सुनकर भीम, अर्जुन आदि की भुजाएँ फड़क उठी पर संसद में उपस्थित कुलवृद्धों का रसहीन रवैया देखकर हस्तक्षेप करना उचित नहीं लगा।

दोनों ओर से निराश द्रौपदी स्वगत कह उठी-ओह ! कैसी यह दीन-स्थिति! रक्षक ही भक्षक बन गया है, बुजुर्ग सर्वथा अनासक्त हैं, पतिदेव मजबूरी के बोझ तले दबे हुए हैं, तब मेरे जीवन का क्या अर्थ रहा! वास्तव में यह संसार कितना सारहीन और स्वार्थी है। यहाँ जब मानवता और शील को नग्न किया जा रहा है, तब क्षात्रधर्म का यूं टुकुर टुकुर ताकना कहाँ का न्याय है? लगता है सतयुग में ही कलियुग आ गया है।

तभी द्रौपदी के चिन्तन का पहिया घूमा-अरे! मैं यह क्या सोचने लगी। ये सारा खेल कर्म-सत्ता का है। उसके सम्मुख तीर्थंकर और चक्रवर्ती भी हार जाते हैं, फिर मेरी तो बिसात ही क्या है! इसमें कूसुर न पाण्डुपुत्रों का है न दुर्योधन-दु:शासन का है। वे सब तो निमित्त मात्र हैं।

बस! मुझे मेरा संकल्प नहीं हारना है। यदि मुझे शील की शक्ति पर श्रद्धा है तो दुर्योधन और दु:शासन तो क्या, विश्व की बड़ी से बड़ी कोई भी शक्ति मेरा बाल बांका नहीं कर सकती। श्रद्धा के तारों पर शील का संगीत छेड़ती हुई द्रौपदी आत्मलीन हो गयी। बाहर का सम्पर्क टूटा कि भीतर में एक प्रकाश हुआ। एक अपूर्व वर्तुल बना। शील के शैल से टकराकर हजारों- लाखों वज्र भी बेकार हो गये। उसकी आन्तरिक शील-निष्ठा ने निश्चय ही सुरेन्द्रों को प्रभावित किया।

दु:शासन चीर को खींचते खींचते थक गया। फिर भी जब उसका किनारा हासिल नहीं हुआ तो उसकी सांस फूलने लगी।

दुर्योधन की चिरप्रतीक्षित चाह अभी भी अधूरी थी। उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरी मनोकामना में यह विलम्ब क्यों हो रहा जबकि वस्त्र का ढ़ेर लग चुका है।

दु:शासन अत्यधिक थक चुका था। हजार पुरूषार्थ साधने पर भी चीर के अन्तिम छोर को पा लेने की संभावना नजर नहीं आ रही थी तथापि दुर्योधन की आज्ञा के विरूद्ध जाकर वह उनकी नाराजगी मोल नहीं लेना चाहता था।

वह काफी समय तक योंहि चीर को खींचता रहा और चीर रबड़ की तरह फैलता रहा। तनिक मायूस होकर वह बोला-राजन् ! क्या करूँ? इसके चीर का अन्तिम छौर नजर ही नहीं आ रहा। यह कोई देव माया है या इन्द्रजाल?

दुर्योधन विस्मित तो था ही पर उन्माद अभी भी कम नहीं हुआ था। दु:शासन ! घबराने की कोई जरूरत नहीं है। आज मैं अपने मन....वह आगे कुछ बोलता, इतने में धृतराष्ट्र की ध्वनि कर्णपटल से टकरायी। अरे निर्लज्जों! अपना ये घिनोना तमाशा बंद करो। बहुत कर ली अपनी मनमानी। तुम्हें न तो अपनी कुल-मर्यादा का बोध है, न अपयश की चिन्ता। तुम कितना ही यत्न क्यों न कर लो, महासती के सतीत्व के सत्त्व की थाह नहीं पा सकोगे।

इधर द्रौपदी अभी भी परम शान्त, स्थिर और ध्यानस्थ थी। बाहर की प्रवृत्तियों से उसे कोई सरोकार नहीं था। उसके मुख पर दपदपा रहा शील का तेज हर किसी को मंत्रमुग्ध और पराभूत करने वाला था।

सतीत्व का विशेषण सुनकर दुर्योधन झल्ला उठा। तात् ! लगता है साठ वर्ष की उम्र में आपकी बुद्धि भी सठिया गयी है अन्यथा पांच पतियों के साथ भोग भोगने वाली स्त्री को सती कभी नहीं कहते।

द्रौपदी के शील का बखान करते हुए धृतराष्ट्र बोले-विकारों के जंगल में भ्रमण करने वाली तेरी दुर्बुद्धि में गुणों का उपवन कहाँ से खिलेगा। अरे! द्रौपदी भले ही पाँच पतियों की पत्नी है तथापि जिस दिन जिसके साथ पत्नी के रूप में प्रस्तुत होती है, उस दिन शेष चारों पतियों को देवर और ज्येष्ठ के रूप में मानती है।

शील का दिव्य प्रभाव खुली आँखों से देख रहे हो, तब भी तुम लोगों में अक्ल कहाँ है? तुम कितने ही हथकण्डे क्यों न अपना लो, सतीप्रवरा के विस्तृत शील समुद्र की थाह कभी भी नहीं पा सकोगे। अच्छा यही होगा कि इसी क्षण इस निर्लज्ज कृत्य को विराम दो अन्यथा इस सती के कोप के भाजन बन गये तो हमारा नामोनिशां ही मिट जायेगा।

यद्यपि दुर्योधन का कामातुर मदांध मन धृतराष्ट्र के कथन से सहमत नहीं था तथापि चीर का ढेर लगा देने पर भी

उसका छोर नजर नहीं आ पाने के कारण स्वयं पटाक्षेप करने के लिये मजबूर था।

गहरा लम्बा उसास छोड़ता हुआ दुर्योधन बोला-छोड़ो, दुशासन! यों चीर का ढ़ेर लगाने का अर्थ भी क्या है! द्रौपदी कोई स्त्री है या कपड़े का मालगोदाम। अब इस कपड़ा बनाने वाली स्त्री की भला क्या जरूरत, जिसके हुस्न का आनंद ही उठाया न जा सके।

पल दो पल पश्चात् द्रौपदी विशिष्ट ध्यान-साधना के प्रयोग से बाहर आयी। वह परम सहज, शान्त और समाधिस्थ थी। उसकी आँखों की आभा विशिष्ट थी। मुख-मण्डल इतना दैदीप्यमान था कि देखने वाले की आँखें ही चुंधियां जाये।

दुर्योधन तात् धृतराष्ट्र की ओर मुखातिब होकर बोला-पिताश्री! द्युतक्रीड़ा में पराजय के साथ पाण्डुपुत्रों की सम्पूर्ण चल व अचल सम्पत्ति पर मेरा अधिकार हो चुका है। बारह वर्षों की निश्चित कालावधि पर्यन्त इन्हें वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास करना होगा। हाँ! एक रास्ता जरूर है, यदि द्रौपदी मेरी आज्ञा स्वीकार कर ले तो उसके साथ-साथ पाण्डु-पुत्र वनवास से बच सकते हैं एवं राज्याधिकार भी पुनः मिल सकता है।

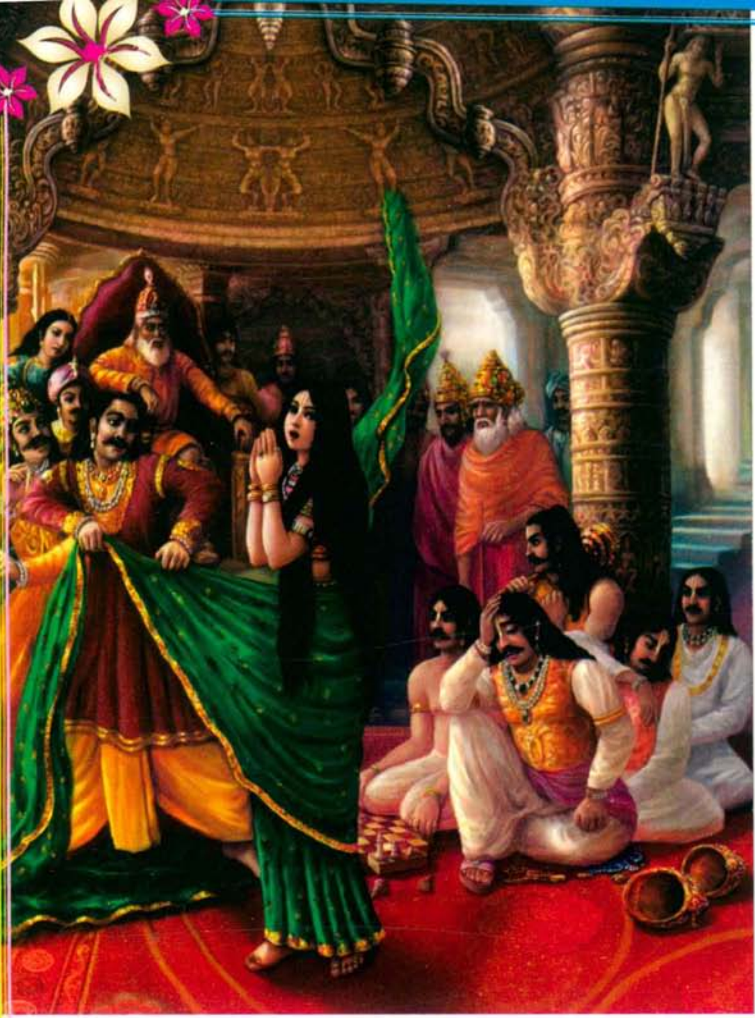

द्रौपदी का चीरहरण

द्रौपदी संयत स्वर में मुखर हुई-दुर्योधन! तेरा साम्राज्य तो क्या स्वयं सुरेन्द्र भी अपना सुरलोक मुझे समर्पित कर दे, तब भी मैं अपने शील का सौदा नहीं करूंगी। बीहड़ वन में कष्टों की ज्वालाओं का पान करना मुझे स्वीकार है, पर अशील के शीतल जल से अपनी प्यास को बुझाना कदापि स्वीकार्य नहीं है।

मुझे अपने नाथ के साथ भूख-प्यास के कष्टों को सहना, वन-वन घूमना मंजूर है। तेरे वासनामय भोग-साधनों की मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं करती। इसी वक्तव्य के साथ उसके साहसी और आत्मविश्वासी कदम वनवासी जीवन की ओर मुड़ गये।

बहुत कठिन है जंगल की दुविधाओं के बीच चलना, जीना और अपनी प्रसन्नता को बनाये रखना। यद्यपि नियति ने उनके साथ अतिक्रूर मजाक किया है तभी तो राजा और राजपरिवार के अंग होने पर भी उन्हें आज वन-वन भिखारी की तरह भटकना पड़ रहा है।

सब कुछ लूट जाने पर भी उन्होंने अपने संयम और संतुलन को बचाये रखा है, और यह उनकी सबसे बड़ी निधि भी है। भोजन-पानी देर सवेर मिलता है, कभी कभी तो पानी पीकर ही सो जाना होता है। कोई स्थान नहीं मिला तो वृक्ष के नीचे सो जाना उनकी मजबूरी है, फिर भी मानसिक सहिष्णुता, धीरता और गंभीरता की छाँव उन्हें सुकुन देती है। समत्व को साधते हुए कष्टों के दिन और पीड़ा की रातें हँसते हँसते बीता देते हैं।

दिन बीतते जा रहे हैं, रातें पीछे छूट रही हैं और समत्व एवं समझ का आँचल थामे एक वन से दूसरे वन, एक नगर से दूसरे नगर, एक डगर से दूसरी डगर, आगे ही आगे बढ़ते जा रहे हैं। इसी क्रम में एक बीहड़-बियावना ऐसा कानन राह में खड़ा हो गया है, जिसे पार किये बिना किनारा नहीं मिल सकता। दूसरा कोई मार्ग भी नहीं है। उस जंगल में भरी दोपहर में भी जैसे घना स्याह अंधकार पहरा दे रहा है।

पाण्डुपुत्र माँ कुन्ती और द्रौपदी की सार संभाल लेते हुए एक दूसरे का आश्वासन बनकर चले जा रहे हैं। जंगल पूरा हो, उससे पूर्व दूसरे अवरोध के रूप में उत्तुंग पर्वत मध्य मार्ग में उपस्थित हो गया है।

वृद्ध कुन्ती के लिये विहरण अधिक दुरूह बन गया है, तब पांचों पुत्र अहमहमिकया कंधे का सहारा देते हुए आगे बढ़ाते हैं, इसी सफर में अचानक द्रौपदी के पांवों में तीक्ष्ण कांटा चुभ जाता है। दो-तीन बार कोशिश करने पर भी जब शल्योद्धार नहीं हो पाता, तब वह आंचल से छोटा-सा भू भाग स्वच्छ करके वहीं बैठ जाती है। बहुत गहरा चला जाने से पांच-सात बार की अविराम मेहनत से शल्योद्धार होता है और रक्त प्रवाहित होने लगता है। अपने आंचल का किनारा फाड़कर द्रौपदी घाव पर पट्टी बांधकर आगे चलती है, तब सहसा उसे ख्याल में आता है कि स्वामी कहाँ गये? माता कुन्ती भी नजर नहीं आ रही।

वह तीव्र कदमों से पर्वत के शिखर पर पहुँचती है, चारों ओर नजर डालती है पर कहीं कोई नजर नहीं आता है। सन्तप्त मन से वह पुकारती है-....स्वामिन्....कहाँ हो? पर, उसकी पुकार नीले अनन्त आकाश में कहीं खो जाती है।

आँखें फाड़-फाड़कर वह बहुत दूर-दूर तक खोजती है पर कहीं कोई चरण चिह्न दृष्टिगत नहीं होता।

ओह ! कहाँ चले गये प्राणेश्वर ! क्या वे मुझसे इतने अनासक्त हो गये कि मेरा ध्यान रखना ही चूक गये। नहीं... नहीं... यह तो कर्मों की भूलभूलैया है। वह भूला भी देती है, याद भी दिलाती है पर अब कहाँ जाऊँ? किसे पुकारूँ? किससे पूछुं? वह उड़ते पंछियों से....खड़े वृक्षों से पूछती है पर कहीं कोई पता नहीं चलता है, तब चिन्तित हो एक बरगद की छाँव तले बैठ जाती है। दिमाग पर जोर लगाते लगाते मन सुन्न होने लगता है और कब उसके नयन उन्मीलित हो जाते हैं, उसे पता ही नहीं चलता।

एक घटिका जितनी अवधि व्यतीत होते होते द्रौपदी निद्रा से बाहर आती है। निकट ही बह रहे झरणे के पानी से अपनी प्यास बुझाती है। थकान व सुस्ती दूर हो, उससे पहले अनिश्चित विकट भावी की ओर ताकती है तो मन घबरा उठता है-ओह! क्या अब यूँ ही अकेले में जीना होगा। कहाँ मिलेगा आत्मीयजनों का अपनत्व, साथ और विश्वास! फिर पेट का यह गड्ढा रोज-रोज भरने पर भी रिक्त रहता है, इसकी क्या व्यवस्था होगी। इतने में एक काकयुगल काँव काँव करता हुआ उसे पुकारता है। द्रौपदी अपनी सूक्ष्मप्रज्ञा से किसी अदृष्ट संकेत का अनुमान लगाती हुई उत्तर दिशा में उड़ान भर चुके काक-युगल की ओर कदम आगे बढ़ाती है। एक न्यून कालावधि पार होने पर वह अपने आपको सरोवर

के निकट पाती है।

उस प्राकृतिक छटा को निहार कर उसके उदास मन को तनिक प्रफुल्लता मिलती है। बहते झरणें....निर्मल नीर....नाचते मोर....हरियाली से सजी धरती और निकटस्थ एक गुफा! गुफा स्वच्छ है, थोड़ी गहरी है, सर्दी और वर्षा, दोनों ऋतुओं में सुरक्षा प्रदान करने वाली है।

पंचपरमेष्ठी का स्मरण करती हुई द्रौपदी वहीं रूकने का मानस बना लेती है। उसका मन स्थितप्रज्ञ हो चिन्तनशील हो जाता है-अरे ! मुझे इस तरह व्यथित-पीड़ित नहीं होना चाहिये। बाधाएँ आती हैं पर वे हमेशा की थोड़े ही न होती हैं। पतझड़ का आगमन उद्यान को उजाड़ने के लिये नहीं वरन् उसे नयी बहार देने के लिये होता है। हर सूर्यास्त के पीछे सूर्योदय का, हर रात के बाद प्रभात का आनंद छिपा होता है।

मायूसी से भरे अकेलेपन को मैं साधना से एकान्त में बदल सकती हूँ। अरे ! योगी भी जिस शान्त वातावरण, एकान्त स्थान, नीरव प्रकृति और सहज माधुर्य-सौन्दर्य की चाह रखते हैं, वह वरदान के रूप में मुझे सहज ही उपलब्ध हो गया है।

वन में एकाकी द्रौपदी

दृष्टि बदलते ही द्रौपदी की जीवन-सृष्टि बदल गयी। स्वाध्याय, ध्यान, साधना, तप, करूणा, प्रतिबोध, इन विविध इन्द्रधनुषी रंगों में आत्म-विकास के नये पदचिन्ह करती हुई समय का सदुपयोग करने लगी।

इधर युधिष्ठिर ने जैसे ही पीछे मुड़कर देखा, चिन्ता की लकीरें माथे पर उभर आयी।

भीम ! अर्जुन ! द्रौपदी कहाँ छूट गयी? इस घने जंगल में खोज पाना भी तो सरल नहीं होगा।

पांचों भाई अलग-अलग दिशाओं में द्रौपदी की खोज में प्रयत्नशील हो गये पर कहीं कोई सुराग नहीं मिला। घण्टों-घण्टों की मेहनत बेकार गयी। थक हारकर आखिर उन्हें आगे की राह पकड़नी पड़ी। दिन पर दिन गुजरते रहे पर द्रौपदी का कहीं कोई अता-पता नहीं चला। जिस बस्ती में जाते, वहाँ पूछ-परच करते पर नकारात्मक उत्तर मिलता।

एक बार कुन्ती ने विचित्र सपना देखा कि यहाँ से उत्तर दिशा में द्रौपदी साधनारत है। उसने स्वप्न में प्राप्त संकेत पुत्रों के सम्मुख रखा। भगवान को लाख-लाख धन्यवाद देते हुए वे उत्तर दिशा की ओर बढ़ चले।

काफी दूरी तय करने के बाद वे एक बस्ती में आकर रूके। आदिवासी क्षेत्र....आदिवासी लोग ! उनके मुँह पर एक ही चर्चा- प्रशंसा ! देखो तो अपनी ममतामयी माँ का चमत्कार । शेर-बकरी, बिल्ली-चूहा एक घाट पानी पीते हैं।

दूसरा व्यक्ति बोला-इससे भी बड़ा आश्चर्य ! भयंकर सर्पराज आया और उनकी प्रदक्षिणा देकर प्रत्यावर्तित हो गया।

ओहो ऽऽऽ ! उनके आभामण्डल का प्रभाव कैसा अद्भुत! जैसे जंगल में मंगल की रचना कर रही है हमारी माँ ! खुश्बू से भरा व्यक्तित्व । कभी अमी की वर्षा तो कभी केसर की फुहार।

लोगों की चर्चा ने पाण्डवों के मन में एक आशा की किरण जगा दी। उन्होंने एक व्यक्ति से निवेदन किया-अरे भैया ! तुम्हारी माँ के हमें भी दर्शन करवा दो, कदाचित् हमारी उलझनें भी सुलझ जाये।

वे भद्रिक लोग भला क्यों इन्कार करें। पाण्डुपुत्र उनके पीछे-पीछे सौ-दो सौ कदम की दूरी पर सुरम्य प्राकृतिक सुषमा की गोद में गहरी गुफा में पहुँचे।

द्रौपदी उस समय ध्यानस्थ थी। प्यासे को शीतल जल पाकर जितनी प्रसन्नता होती है, उससे भी अधिक प्रसन्न पाण्डव थे, द्रौपदी के रूप में खोयी हुई एक निधि प्राप्त हुई।

द्रौपदी एकान्त-साधना की ऊर्जा से परिपूर्ण होकर पुनः गन्तव्य की ओर चल पड़ी। बस्ती वालों ने माँ को भावभीनी विदाई दी।

घूमते कालचक्र के साथ बारह वर्षों की नियत अवधि परिपूर्ण हुई। अब अज्ञातवास का मात्र एक वर्ष अवशिष्ट था। किसी को एक प्रतिशत भी गंध न लगे, इस तरह अपने आपको छिपाकर उन्हें एक वर्ष की कालावधि पसार करनी थी। वे अनमोल छह मोती, जो एक ही धागे में पिरोये हुए हैं, मजबूरीवश उन्हें अलग-अलग होना पड़ा।

द्रौपदी की नियुक्ति विराट राजा की महारानी का अन्त:पुर जहाँ मुस्काता है, वहाँ हुई है।

हस्तिनापुर की महारानी एक सेविका बनकर सेवा के बल पर न केवल राजा विराट् की महारानी का दिल जीता अपितु कार्यकुशल, विश्वस्त, योग्य और धैर्य की प्रतिमा के रूप में अपनी पहचान भी कायम कर ली।

उसने अपना नाम रखा-सैरन्ध्री ! अपनी अंगुलियों की विविध कलाओं से उसने रानी सुदेष्णा के सौन्दर्य को नया रूप-निखार दिया और महारानी की सर्वाधिक विश्वस्त सेविका के रूप प्रसिद्ध हो गयी।

महारानी के भाई कीचक का एक बार भगिनी से मिलने के लिये आना हुआ। सैरन्ध्री पर पड़ी एक नजर उसके मन में अनेक चाहतें जगा गयी। वैसे भी वह कामुक वृत्ति वाला था। द्रौपदी के सौन्दर्य ने उसके दिन का चैन और रात की नींद छीन ली।

द्रौपदी किस मिट्टी की बनी है, कामवासना के गट्टर में जीने वाले उस कीड़े को भला क्या पता था? वह दासियों के साथ स्वर्णाभूषण भेजने लगा पर द्रौपदी उन अपवित्र आभूषणों का स्पर्श किये बिना ही लौटा देती। इन्कार-इन्तजार के साथ बेचैनी बढ़ती रही। और एक दिन तो सैरन्ध्री जब आवास स्थल की ओर जा रही थी, कीचक ने तो एकान्त पाकर उसका हाथ पकड़ लिया।

द्रौपदी तत्काल हाथ छुड़ा गंतव्य की ओर बढ़ गयी। मन में आया कि इस कीचक की अश्लील हरकतों का भण्डाफोड़ महारानी के सामने कर दूं परन्तु अपने गुप्त वर्षावास की स्थिति में कुछ भी कहना उचित नहीं लगा। कीचक की अभद्र मन:स्थिति से पाण्डुपुत्र क्रुद्ध हुए बिना नहीं रहे।

पांचाली! तुमने अगर पहले ही संकेत दे दिया होता तो ठीक रहता। रोग और शत्रु को पालना उचित नहीं । उन्हें तो

तत्काल समाप्त कर देना चाहिये। दूसरे दिन भीम वेश परिवर्तित कर सैरन्ध्री के रूप में प्रस्तुत हुआ। एकान्त में कीचक की अश्लील हरकत पर उसके मुख पर ऐसा जोरदार मुक्का जड़ा कि दूसरे ही पल उसके प्राण पंचतत्त्व में विलीन हो गये।

वनवास की अवधि पूर्ण करके लौटने पर दुर्योधन राज्याधिकार देने से मुकर गया। अन्ततोगत्वा पाण्डवों और कौरवों के मध्य महायुद्ध हुआ जो महाभारत के नाम से विश्व-विश्रुत है।

इसी युद्ध के दौरान एक हृदयद्रावक घटना घटती है।

द्रौणपुत्र अश्वत्थामा के मन में घोर प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। रात्रि में सुख निद्रा में लीन द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का वध करके वह नौ दो ग्यारह हो गया।

पाण्डुपुत्र दु:खी थे पर माँ द्रौपदी की पीड़ा का पार नहीं था। पाण्डु पुत्र-उपवन के इन सुकोमल फूलों ने उस हत्यारे का क्या बिगाड़ा था जिसने मेरी हरी-भरी जीवन वाटिका उजाड़ दी।

अश्वत्थामा कितना ही दूर क्यों न भाग जाये, चाहे किसी भी गुफा-कन्दरा में छिप जाये पर पाण्डुपुत्रों के लम्बे हाथों से कब बच सकता था।

पाण्डुपुत्रों ने उसे द्रौपदी के चरणों में पटकते हुए-बोले-द्रौपदी! इसे क्या सजा दी जाये?

द्रौपदी साध्वी की तरह क्षमामूर्ति बनकर बोली-इसे क्षमादान देना चाहिये।

तनिक हैरानी से युधिष्ठिर बोले-पांचाली! क्या तुम इतनी जल्दी भूल गयी कि इसी दुष्ट ने हमारे पाँचों पुत्रों को छीना है।

स्वामिन्! भूली नहीं पर इसके प्राण लेने से मुझे क्या मिलना है? इसके शूली पर चढ़ जाने से न तो मेरी आँखों के तारे वापस लौट सकते हैं, न मुझे सुख और सुकून मिल सकता है।

फिर मुझे यह प्रतिपल याद है कि अश्वत्थामा भी किसी माँ का पुत्र है। पुत्रों की विरहाग्नि में मैं जिस तरह पल-पल जल रही हूँ, वैसे ही इसके अभाव में गुरु पत्नी को भी विरह व्यथा सहनी पड़े, यह मैं नहीं चाहती।

तत्क्षण तनिक गंभीर होकर द्रौपदी उपदेशात्मक शैली में मुखर होती है-हिंसा से हिंसा, वैर से वैर कभी भी शान्त नहीं होता। कोई व्यक्ति यदि घृत डालकर आग का शमन करना चाहे तो क्या वह संभव होगा? कभी नहीं ! प्रेम, मैत्री और अहिंसा वे अमर तत्त्व हैं, जो अमरत्व का अमृत फल दे सकते हैं। प्राणी मात्र से मैत्री करना यह मंत्र कहने व सुनने के लिये नहीं, आचरण में उतारने के लिये है।

अन्याय और अनीति के विरूद्ध सत्य और न्याय का शंखनाद

अश्वत्थामा! तुम मेरी ओर से सर्वथा अभय-निर्भय हो। पाप तुमने नहीं किया। अपराध मेरा है, मेरे पूर्वभवों के कृतकर्मों का है जिसने मेरे पुत्रों को मुझसे जुदा किया है। तुम तो केवल निमित्त बने हो। जाओ, अहिंसा और मैत्री के फूलों से अपने वीरान जीवन-जंगल को

उपवन-नंदनवन में बदलने का पुरूषार्थ साधो ।

द्रौपदी का मार्मिक उद्‌बोधन वह काम कर गया, जो हजारों वर्षों के हिंसक युद्ध नहीं कर सकते।

अश्वत्थामा का मन कृत अपराध के प्रति कांप उठा। द्रौपदी में वह महारानी की नहीं, महासती एवं महामाता की छवि देखने लगा। महासती के चरणों मे आलोटता हुआ वह पुनः पुनः मिथ्यादुष्कृतम् देने लगा।

कण्ठ भर आया....आँखें गंगा-यमुना बन गयी....शब्द गले में अटक कर रह गये-माँ....! माँ....! मुझे माफ....आगे वह कुछ भी नहीं बोल सका।

द्रौपदी के वात्सल्य की अमीधारा में स्नात होकर अश्वत्थामा पवित्र हो गया। द्रौपदी ने अपनी करूणा का अनूठा परिचय दिया।

महाभारत का विनाशकारी युद्ध लाखों निर्दोष लोगों का रक्त बहाकर पूरा हुआ।

कौरवों को उद्दण्डता और प्रतिज्ञा भंग का फल मिला। पाण्डव हस्तिनापुर के अधिपति बने और द्रौपदी हस्तिनापुर की महारानी।

आने वाला हर पल द्रौपदी के जीवन में सुख, चैन और आराम का संदेश लेकर आ रहा था पर यह भी तो शाश्वत सच है कि हर दु:ख की रात के बाद सुख का प्रभात होता है तो हर सुख के सवेरे के पीछे दु:ख का अंधेरा भी छिपा होता है।

अचानक द्रौपदी के सुखी जीवन को किसी की नजर लग गयी। एक दिन नारद ऋषि का अन्त:पुर में आना हुआ। द्रौपदी उस समय अपनी दैनिक धर्मचर्या में संलग्न होने से उन पर ध्यान नहीं दे पायी और नारद ऋषि ने इसे अपना अपमान माना। प्रतिशोध की ताक में वे अमरकंका पहुँचे और नरेश पद्मनाभ के सामने द्रौपदी के सौन्दर्य को सुन्दर स्वर दिया। पद्‌मनाभ सौन्दर्य रसिक और विलासप्रिय था। उसने देव की सहायता से द्रौपदी का अपहरण कर लिया।

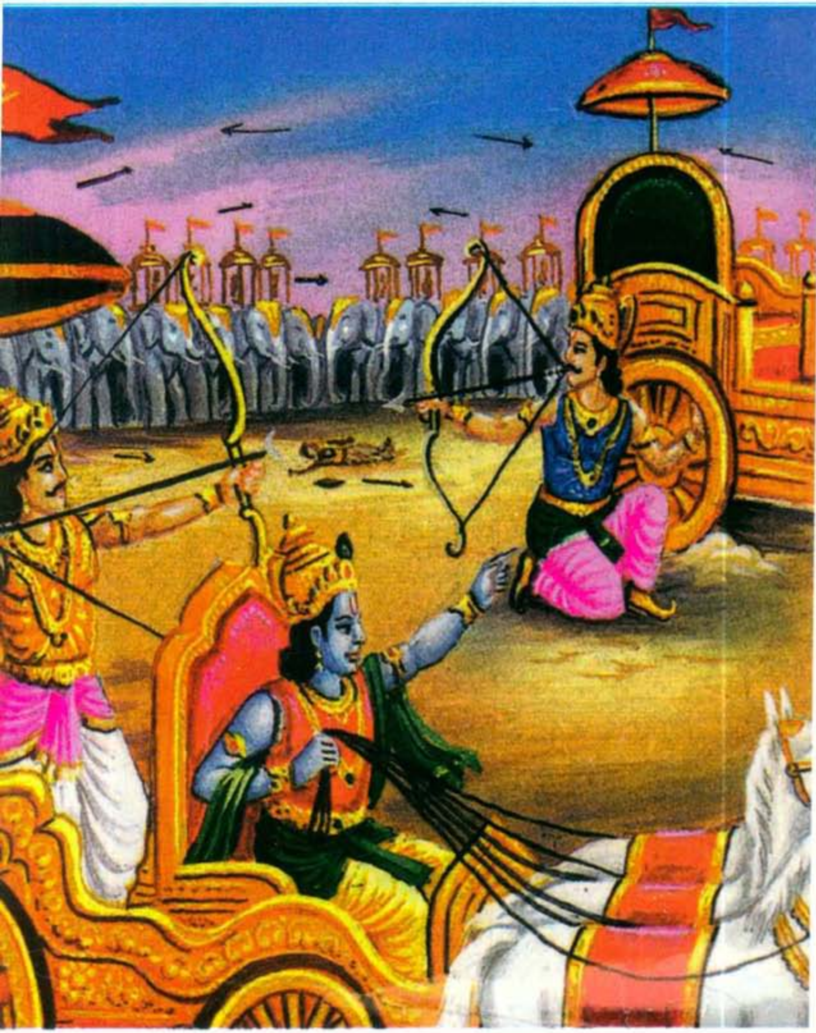

महाभारत का महायुद्ध

देख द्रौपदी ! ये सोने के कंगूरे....ये रत्नमय भव्य राजभवन... तेरे चरणों में समर्पित है। बस ! एक बार तूं मेरी होकर तो देख....।

भोग की नाली के गंदे कीड़ें! अपनी जुबान को तनिक लगाम दे। बीच में द्रौपदी कान्ति बिखरेती हुई बोली ।

मुझे न भोग तो साधनों की भूख है, न अपने शील का सौदा कर सकती हूँ। मुझे पाने के भले ही लाख यत्न कर ले, पर तूं कभी भी पा न सकेगा। सती-सावित्री शील की वेदी पर न्यौछावर होना स्वीकार कर सकती है पर शील को समर्पित नहीं करती।

देवी द्रौपदी! तूं खुद ही सोच । अब तूं मेरे अधिकार में है। आखिर तुझे मेरा होना ही होगा। इसके लिये मैं तुझे छह महिने का समय देता हूँ।

प्रज्ञावंती द्रौपदी सोचने लगी-यह उपाय ठीक है। छह मास की अवधि में स्वामी मुझे खोजते-खोजते अवश्य ही पधार जायेंगे।

द्रौपदी को सुरक्षित भवन प्रदान किया गया।

उसके पल-पल स्वामी के इन्तजार में बीत रहे थे और पद्मनाभ राजा का पल-पल छह माह की पूर्णता के इन्तजार में बीत रहा था। अनचाहे ही उसने छह मास की दीवार खड़ी कर दी। वह वासना के गंदे विचारों में जी रहा था और द्रौपदी आयम्बिल तप की निर्मल सुवास से अपने चित्त को सुवासित कर रही थी।

छह महिने पूरे होते होते पाण्डुपुत्र वासुदेव श्रीकृष्ण की सहायता से द्रौपदी को पुनः प्राप्त कर लेते हैं।

विजय का थिरकता आनंद अपने मन में लेकर द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर की ओर चलते हैं। सुस्थित देव की सहायता से लवण समुद्र को पार कर लेते हैं।

आगे बढ़ने से पहले श्रीकृष्ण कहते हैं-तुम लोग आगे बढ़ो। मैं सुस्थित देव से मिलकर आता हूँ।

पाण्डुपुत्र यात्रा करते हुए आगे बढ़ते हैं, तब बीच में गंगा नदी आती है। नौका में बैठकर वे सभी अत्यल्प समय में ही तट को प्राप्त कर लेते हैं।

तत्क्षण उनके मानस-सागर में एक विचार तरंग जन्म लेती है-आज क्यों न हम महाबली श्रीकृष्ण की शक्ति को देखे। वे किस प्रकार भुजाओं के बल से गंगा नदी को उत्तीर्ण करके यहाँ तक पहुँचते हैं। इस विचार-शृंखला में सोच नहीं पाते कि उन्माद और प्रमाद काम की चीज नहीं। इससे हम अपनी जीवन की बगियाँ के खुशियों के फूलों को अपने ही हाथों कुचल रहे हैं। विजय की उत्तेजना में वे नौका को तटवर्ती वृक्ष से बांध देते हैं और पलक पावड़ें बिछाकर श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं।

इधर वासुदेव श्रीकृष्ण सुस्थित देव की सहायता के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करके गंगा नदी के किनारें पहुँचते हैं। वहाँ नाव की प्रतीक्षा में रूकते हैं पर काफी वक्त बीत जाने पर भी जब निराशा ही हाथ लगती है, तब एक हाथ में अश्व सहित रथ को उठाते हैं और दूसरे हाथ से रास्ता बनाते हुए गंगा नदी के किनारे को सकुशल प्राप्त करते हैं पर थककर चूर-चूर हो जाते हैं।

काफी देर से इन्तजार कर रहे पाण्डव श्रीकृष्ण को देखकर आनंद से भर जाते हैं। श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्रों के अभिनंदन

में कहते हैं-प्रशंस्य है तुम्हारी शक्ति और बाहुबल, जो गंगा नदी को पार कर आये। पद्मनाभ के चंगुल से द्रौपदी को तुम स्वयं ही छुड़वा सकते थे, व्यर्थ ही मेरा आलम्बन लिया।

युधिष्ठिर बोले-प्रभो! हम तो नौका में बैठकर गंगा-पार पहुँचे हैं।

तनिक विस्मित हो श्रीकृष्ण बोले-तो मेरे लिये नौका क्यों नहीं भेजी?

पाण्डव बोले-इसलिये कि हम आपका सामर्थ्य देखना चाहते थे। सुनकर श्रीकृष्ण की भृकुटियाँ तन जाती हैं। वे अतीव क्रुद्ध होकर कहते हैं-अरे मूर्खाधिराजों ! क्या महाभारत का युद्ध तुमने अपने आप जीत लिया या पद्मनाभ के चंगुल से द्रौपदी को यूं ही छुड़ा ले आये, जो मेरे पराक्रम को देखना बाकी रह गया था। वास्तव में तुम्हारी गलती अक्षंतव्य है। तुमने योंहि मुझे हैरान-परेशान किया। वे भयंकर कुपित हो लौह-दण्ड लेकर पाण्डवों का प्राणान्त करने के लिये आगे बढे।

पाण्डव ऐसा आक्रोश देखकर कांप उठे। वे पुनः पुनः कृत अपराध के लिये क्षमा मांगने लगे पर श्रीकृष्ण का उफनता गुस्सा तनिक भी शान्त हुआ तब विकट परिस्थिति को देखते हुए द्रौपदी क्षमार्थी की मुद्रा में मुखर हुई-प्रभो ! ऐसा न कीजिये। छोटे भूल किया करते हैं पर बड़े क्षमा नहीं बिसराते हैं। निश्चित ही इनसे भयंकर भूल हुई है पर आप तो क्षमा के सागर हैं।

इनके प्राण मत लीजिये अन्यथा मैं बरबाद हो जाऊंगी। सदा सदा के लिये मेरी बगियाँ ऊजड़ जायेगी। कहती हुई द्रौपदी श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़ी। उसकी आँखों से बहते आँसुओं से श्रीकृष्ण के चरणों का अभिषेक हो गया।

क्षमादान के शब्दों में श्रीकृष्ण बोले-इन पाण्डवों ने मेरे साथ धृतष्टता जो की है, उसकी सजा मृत्युदण्ड से कम हो ही नहीं सकती पर द्रौपदी! तुम्हारी विनम्रता, शिष्टता और भद्रता को देखकर उन्हें जीवनदान देता हूँ। पर मेरा आदेश है कि वे मेरे राज्य में नहीं रह सकते। शीघ्र ही मेरे आधिपत्य की सीमाओं से बाहर चले जायें।

लवण समुद्र को पार करते हुए

पाण्डव हस्तिनापुर की ओर बढ़ते हुए सोचने लगे-वास्तव में छोटी सी त्रुटि किस प्रकार प्राणलेवा बन जाती है। पाण्डवों के हस्तिनापुर पहुँचने पर कुन्ती को जब सारी बात ज्ञात हुई, तब उनकी गलती से वे अत्यन्त पीड़ित हुई। अन्ततोगत्वा कुन्ती की प्रार्थना को मान देकर श्रीकृष्ण ने दक्षिण समुद्री तट पर पाण्डवों को बसेरा बसाने की आज्ञा प्रदान की।

कृतज्ञ भावों को हृदय में बसाकर पाँचों पाण्डव माँ कुन्ती और द्रौपदी के साथ उस दिशा में प्रस्थित हो गये। गाँवों की गलियों को पार करते हुए वे लक्ष्य के प्रति समर्पित रहे। कभी कभी गुफाएँ, पर्वत, जंगल और खण्डहर भी उनके आश्रय स्थल बनते गये।

कभी सांप के आने की सरसराहट.....जंगली प्राणियों की प्राणलेवा चीत्कार सुन द्रौपदी घण्टों तक जागती रहती। कभी उसकी रूह कांप उठती तो कभी धरती कंपित होती प्रतीत होती। श्वासों के धागे टूटते-से लगते कि फिर पंचपरमेष्ठी की दिव्य शरण उसे भयमुक्त कर देती। कभी चत्तारि मंगलम् का ध्यान धरती तो कभी नमस्कार मंत्र की आराधना में एकाकार हो जाती। ध्यान से बाहर आकर जब कभी कर्मों की विचित्रता पर दृष्टिपात करती तो समझ में नहीं आता कि खुद की किस्मत पर रोना चाहिये या हँसना? सोचती सोचती अतीत के कितने ही पन्नों को खोल कर पढ़ने लग जाती।

....पिताश्री द्रुपद का महल....। वात्सल्य की चौखट....। उसी नगरी में एक बार महामुनि पधारे। वे असाधारण ज्ञान के धनी थे। मैं उनकी पर्युपासना के लिये उपस्थित हुई। अमृत-प्रवचन के उपरान्त मेरी जिज्ञासा को समाहित करते हुए मेरे पूर्वजन्मों के एक-एक पृष्ठ को खोलकर पढने लगे-द्रौपदी! अनेक भवों पहले तूं नागश्री नामक ब्राह्मणी थी। तुम्हारे पति सोम भ्रातात्रय में मध्यवर्ती थे। सामूहिक जीवन शैली! तुम सबकी घरेलू काम के लिये क्रमशः नियुक्ति होती थी। कार्यकुशलता के द्वारा तेरे मन में यश बटोरने की कांक्षा नाचती रहती थी। पाककला में अपना चातुर्य प्रदर्शित करने के लिये तूंने एक दिन विशिष्ट व्यंजन तैयार किये। बाकी सब बराबर था पर शाक का लघु टुकड़ा अपने मुख में रखा कि तुम्हारा मुख कड़वाहट से भर गया। थूं...थूं...करती हुई तूंने उसी पल बाहर थूंक दिया। तूं समझ गयी-ओह! यह तो

कड़वी तुम्बी है। जहर भरा हुआ है इसमें।

चतुरता से तूंने शीघ्र ही दूसरा शाक बना लिया पर उस सब्जी को कहाँ फैंकना, यह प्रश्न मन में चल रहा था। संयोग से उसी समय 'धर्मलाभ' के मंगल आशीर्वाद के साथ मुनीन्द्र धर्मरूचि अणगार का तुम्हारे घर में भिक्षाचर्या के दौरान आना हुआ। वे मुनि मासक्षमण के तपस्वी थे।

इष्ट-अनिष्ट का तनिक भी विचार किये बिना तूं जहरीली सब्जी मुनिश्री के पात्र में डालने लगी। तुझे तो सब्जी का समापन करना था इसलिये मुनीन्द्र के मना करते-करते भी तूंने सारी सब्जी भिक्षापात्र में खाली कर दी।

श्री कृष्ण द्वारा कोप

द्रौपदी का मन दर्द से भर उठा-ओह! मैंने ये कैसा अनर्थकारी कार्य कर लिया, तभी उसके कर्णपटल से केवलज्ञानी भगवंत के शब्द टकराये-आहार उदरस्थ करने से पूर्व मुनिवर जब अपने गुरु महाराज के उपपात में पहुँचे, तब ज्ञानी गुरुदेव ज्ञान से जान गये कि यह आहार ग्राह्य नहीं है। उन्होंने आदेश दिया कि इस आहार को निरवद्य भूमि में परठ आओ।

द्रौपदी के हृदय की उत्सुकता बढ़ गयी। श्वास को संतुलित करके केवली प्रभु पुनः मुखर हुए-द्रौपदी! उन मुनीन्द्र की समता को तो देखो कि जब गुर्वाज्ञा धारण कर वे जंगल में आहार परठने के लिये पहुँचे, तब शाक की एक बूंद भूमि पर गिरी। परिणाम स्पष्ट था । उसकी गंध से चींटियों का रैला उस ओर आने लगा और बिच्छु के तीक्ष्ण दंश से भी खतरनाक जहरीला स्पर्श पाकर मृत्यु की गोद में समाने लगा।

देखते-देखते कुछ ही पलों में सैंकड़ों चींटियाँ शाक की एक बूंद की बलि चढ़ गयी।

करूणासागर मुनि यह दृश्य भला कैसे देख पाते। ओह....! जीवों का भयंकर विनाश! महाहिंसा को आमन्त्रण! दुष्ट कर्मों का बंधन और विस्तृत जन्म-मरण की अनिष्ट परम्परा सर्जन!

गुर्वाज्ञा पुनः उनके स्मृति-पथ पर विचरण करने लगी-ओह! गुरुदेव ने कहा था-ऐसे स्थान पर परठना, जो निरवद्य हो, जहाँ किसी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की हिंसा न हो। यहाँ तो मुझे कोई भी निरवद्य स्थान नजर में नहीं आ रहा। मेरा उदर ही मुझे निरवद्य लगता है।

क्षमाश्रमण मुनीन्द्र धर्मरूचि अणगार ने वह सारी जहरीली सब्जी उदरस्थ कर ली। विष ने तपोपूत शरीर पर ऐसा प्रभाव दिखाया कि महामुनि की तेजस्वी आत्मा कुछ ही पलों में अगले पड़ाव की ओर प्रस्थान कर गयी।

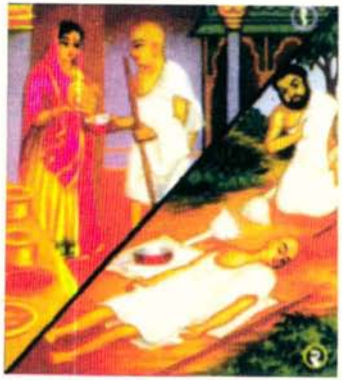
नागश्री ब्राह्मणी द्वारा कटु आहार से धर्मरूचि अणगार का समाधिमरण

भंते! ज़रूर इस अनिष्ट प्रवृत्ति का दुष्फल मुझे भोगना पड़ा होगा। अनायास ही द्रौपदी के मुख से शब्द निकल पड़े।

हाँ द्रौपदी! कर्मों का भुगतान हर आत्मा को करना ही होता है। मुनि के देहावसान की घटना हवा की तरह पूरे नगर में फैल गयी। सभी लोग नागश्री को धिक्कारने लगे। इससे भी अधिक कास, योनिशूल आदि सोलह रोगों ने उसकी काया को छलनी-छलनी कर दिया। आर्त्त-रौद्र ध्यान में उसने शरीर को त्यागा और उसकी छोटी सी चालाकी उसे छट्ठी नरक तक खींचकर ले गयी। वहाँ के घोर-कठोर कष्टों को सहने के पश्चात् भी नागश्री तिर्यंच योनि में अनेक भवों तक चक्कर काटती रही। जब कर्मों का जोर थोड़ा कम हुआ, तब उसने एक श्रेष्ठी के घर में कन्या के रूप में जन्म लिया। उसका वर्ण सुन्दर, सुकुमार और सौम्य था अतः गुणोपेत नाम दिया गया-सुकुमालिका!

बचपन के सोपानों को पार सुकुमालिका यौवन के कक्ष में प्रविष्ट हुई। उसका छरहरा बदन....अर्द्धचन्द्राकार अधर युगल....। अंग अंग से टपकते सौन्दर्य में गजब का आकर्षण था। परिणय के उपरान्त जब मिलन की प्रथम रजनी में श्रेष्ठी पुत्र सुकुमालिका का स्पर्श करने को आतुर हुआ कि उसके शरीर से विद्युत् तरंगें प्रवाहित होने लगी। ऐसे में भला उसके स्नेह-पाश में वह कैसे बंधता! परिणाम यह आया कि कितने ही श्रेष्ठीपुत्रों ने सुकुमालिका को अपनाना चाहा पर

सफल नहीं हो पाये। यह बात माता-पिता के लिये चिन्ताजनक थी तो तेरे लिये भी कोई कम घातक नहीं थी।

एक ओर यौवन का उन्माद, दूसरी ओर विकट विद्युत् तरंगें। काम लिप्सा में लिप्त सुकुमालिका ने एक भिखारी को बहुत सारा धन देकर विवाह करने के लिये राजी कर लिया पर वह भी पहली रात में ही भाग निकला।

द्रौपदी! सुकुमालिका के भव में तुम्हारी व्यथा का कोई पार नहीं था। व्यर्थ जाते यौवन की चिंता ने तुझे रूग्ण बना दिया।

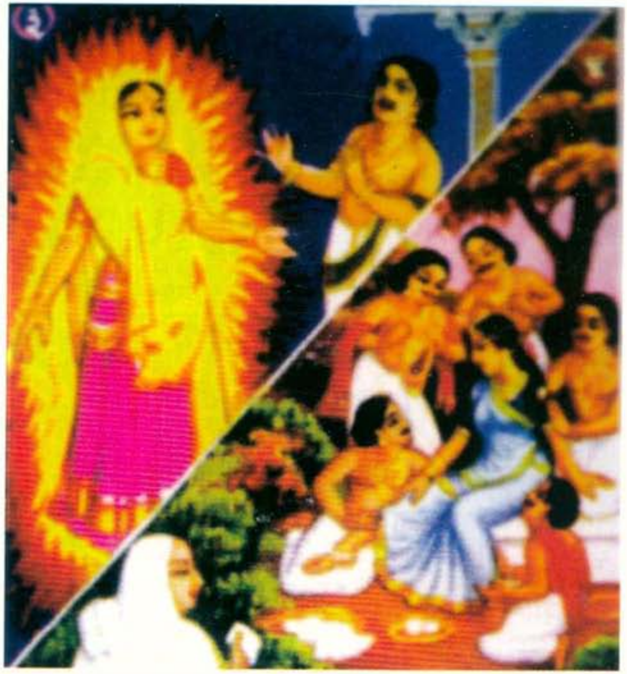

सुकुमालिका के शरीर में विद्युत् तरंगे एवं निदान

एक बार उपाश्रयस्थ साध्वियों के उपपात में पहुँचकर तूंने मनोव्यथा प्रकट की। संवेगी श्रमणी वर्ग की संचालिका साध्वी गोपालिका ने कहा-हम पुरूषवशीकरण का कोई मंत्र-तन्त्र नहीं जानती पर इन्द्रियों व मन को वश में करने का मन्त्र जरूर जानती हैं। वैराग्य सभर वाणी सुनकर तूं उनकी निश्रा में संयम साधना के राजमार्ग पर चल पड़ी। जप, तप और वेयावच्च के विविध संकल्पों को स्वीकार करके कषायों को मंद करने लगी। एक दिन ऐसा हुआ कि तेरे मन में आतापना लेने की आकांक्षा ने जन्म लिया। पूजनीया गुरूवर्या के चरणों में जाकर तूं निवेदन करने लगी-पूज्ये ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सुभूमि उद्यान के निकट बेले-बेले के तप से शरीर-संपदा का सदुपयोग करती हुई सूर्य की आतापना लेना चाहती हूँ। आतापना परीषह में खुद को तपाकर कर्म-ईंधन को तपाग्नि में भस्मीभूत करना चाहती हूँ। तदर्थ आपकी अनुमति आवश्यक है। गुरुवर्या ने कहा-साध्वी

सुकुमालिके! उपाश्रय से बाहर श्रमणी के लिये आतापना लेने का जिनाज्ञा में प्रावधान नहीं है। अन्य साध्वियों के साथ रहकर उपाश्रय के अन्दर ही वस्त्रावृत्त शरीर से सूर्य की आतापना लेना कल्पता है । यह कहकर उन्होंने कर्म निर्जरा के अनेक वैकल्पिक मार्ग सुझाये पर तूंने अपना हठाग्रह नहीं छोड़ा। आखिर साध्वी संघ का त्याग करके मनमाना आचरण करने लगी। सुभूमि उद्यान के आसपास तपपूर्वक आतापना लेने लगी।

एक बार तूं आतापना ले रही थी। बंद नयन! ध्यान में रमा मन! तूं गहराईयों में उतरती, उससे पहले तेरे कानों में काम-कथा के शब्द पड़ने लगे। कुछ ही पलों में तेरा मन इतना उत्तेजित हो गया कि बंद आँखें खोलकर तूं यत्र-तत्र-सर्वत्र देखने लगी। अचानक तेरी दृष्टि शून्यगृह पर जा टिकी। तूंने देखा कि एक दत्ता नाम की वेश्या पाँच पुरुषों के साथ कामभोग कर रही है।

अब तो तेरा मन बुरी तरह हिल गया। तूं मनोगुप्ति का त्याग करके सोचने लगी-ओह! यह नारी कितनी पुण्यशालिनी है, जो पाँच-पाँच पुरुषों के साथ काम भोगों का आनंद मना रही है और एक मैं अभागिनी हूँ, जिसे एक भी पुरुष का योग नहीं मिला। इन भावों के प्रवाह में तूं (सुकुमालिका) बही तो ऐसी बही कि अपना आचार भूलाकर विचार करने लगी कितना अच्छा हो कि अगले भव में मुझे पाँच पतियों का योग प्राप्त हो ।

द्रौपदी! तूंने अक्षय सुख देने वाले तप का सौदा नश्वर भोगों से कर लिया।

अतीत के पृष्ठों को खोलती, पढती, पलटती हुई द्रौपदी सुखद समीर के शीतल स्पर्श को पाकर निद्राधीन हो गयी।

प्रभात की उजली किरणें आगे बढने-चलने का निर्देश दे रही थी। द्रौपदी की यात्रा वहाँ तक चलती रही, जहाँ तक सच्चा हीरा प्राप्त न हो जाये। मथुरा संयम महोत्सव की पावन भूमि बन गयी। संयम साधना से कर्मों को खपाकर कषायों को मंद करती हुई द्रौपदी सुरलोक की छाँव में पहुँची।

सव्वेसिं पि वयाणं, भग्गाणं अत्थि कोइ पडिआरे ।
पक्कछउस्स व कन्ना, ना होई सीलं पुण्णो भग्गं ।।

अहिंसा आदि किसी भी व्रत के खण्डित होने पर उसे पुनः जोड़ने का उपाय हो सकता है, पर भग्न शील को नहीं । उसे जोडने का अर्थ है - पके हुए घट की ठीकरी को पुनः संयुक्त करने का निष्फल यत्न करना। शील को जीवन से जोडना अशक्य है।

शीलकुलकम् - 18

जैन परम्परा में नारी को सम्मानित स्थान प्राप्त है। इसका विवरण इस अवसर्पिणी के आदिकाल के आदिपुरुष आदिनाथ के चरित्र से प्राप्त होता है ।

ब्राह्मी परमात्मा ऋषभदेव के शासन की प्रथम साध्वी बनी और श्रमणी-संघ का सुन्दर, सुव्यवस्थित और सुयोग्य संचालन किया । सुन्दरी ने त्याग का मुकुट पाने के लिए राज वैभव को ठुकरा दिया। चन्दन बाला, मृगावती, कौशल्या जैसी अनेक सतियाँ इस चौबीसी में हुई, जिन्होने नारी जगत का उत्थान किया, गौरव बढाया और आदर्श स्तम्भ स्थापित करती हुई इस युग की वरदान बन गयी।

आज हर नारी यह चिन्तन करें कि मुझे वरदान बनना है एवं शील, संस्कार और सादगी से अमिट पदचिन्ह् अंकित करने हैं।

भरत ! मैं तुझमें और राम में कोई भेद नहीं देखती। जैसे मेरे लिये राम है, वैसे तू है। आज तक मैंने राम की भावना को नहीं तोड़ा, फिर तेरा दिल कैसे तोड़ सकती हूँ !

कौशल्या जैसी कोई नहीं। कभी राम को वनवास की आज्ञा दे स्वयं महलों में वनवासिनी बन जाती है तो कभी अपनी त्याग-निष्ठा और निस्पृह वृत्ति से भरत के मन में वह स्थान बना लेती है, जो जन्मदात्री कैकयी भी नहीं बना पाती है।

वत्सलता की प्रतिमूर्ति

महासती कौशल्या

महासती कौशल्या

अयोध्या का आनंद आज सारी सीमाओं को लांघकर अनहद हुआ जा रहा है। आज का सूर्योदय जैसे सौभाग्य और पुण्योदय की लालिमा लेकर अवतरित हुआ है।

गली-गली में....घर-घर में हर दहलीज पर प्रेम और बधाई की मिठाई बँट रही है। क्या बाल, क्या युवा, क्या प्रौढ़ और वृद्ध, कोई भी आज फूला नहीं समा रहा है।

लोगों का मेला-रेला एक दिशा में बढ़ता जा रहा है और यह है महाप्रतापी सम्राट् दशरथ का भव्य उत्तुंग व रमणीय राजभवन, जिसकी छटा तो आज देखते ही बनती है। फूलों से सजा महल जैसे उपवन की भाँति खुश्बू से खिल उठा है। चारों ओर खुशी के दीप जलाए जा रहे हैं। विशाल पाण्डाल में हजारों लोग दिन के पहले प्रहर में ही आकर उपस्थित हो चुके हैं।

राजा से प्रजा, रानी से दासी, हर होंठ पर मुस्कान के मुकुल सज गये हैं। सर्वाधिक प्रसन्न और भाव विभोर है अयोध्या की महारानी कौशल्या !

उसकी चिरसंचित भावना आज साकार हो रही है। कब से वह देख रही है युवराज राम के राज्याभिषेक के सपने। उसके रोम-रोम में राम का समर्पण, विनय और कृतज्ञ भाव उभर आया है। उसके कक्ष में आज चहल-पहल भी अतिविशेष है। वस्त्र और दिव्य आभूषणों से सज-संवर रही कौशल्या साक्षात् लक्ष्मी प्रतीत हो रही है।

अचानक उसे याद हो आया है अपराजिता से कौशल्या तक पहुँचने का गरिमामय इतिहास! बहुत कम लोगों को पता है उनकी जीवन-कहानी।

स्मृतियों के रथ पर आरूढ़ होकर कौशल्या प्रत्यावर्तित हो चली है और एक-एक करके जैसे सारी घटनाएँ उसके सामने घटित होने लगी हैं।

कुशस्थलपुर छोटा पर संगठित और समर्पित प्रजाजनों का आश्रय स्थल है। नीतिनिपुण महाराज सुकौशल राजसिंहासन पर बैठे प्रजाजनों की पीड़ाएँ-बाधाएँ सुनकर करुणार्द्र हृदय से दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ पलों में गुप्तचर का आना हुआ है। उसकी गंभीर मुखाकृति देख सम्राट् की व्यग्रता बढ़ गयी है। अगले कुछ ही क्षणों में सभा का विसर्जन कर वे निजी सूचना कक्ष में पहुँच गये हैं।

सम्राट सुकौशल को दशरथ के आगमन का संदेश

गुप्तचर पहले से ही वहाँ उपस्थित है। हाथ जोड़ कर उसने सन्मान और आदर भाव प्रस्तुत किया है।

क्या बात है? तुम गंभीर और भयभीत दिख रहे हो।

हाँ राजन्! अयोध्या के अधिपति दशरथ अपनी विशाल सेना के साथ हमारी सीमाओं की ओर बढ़ रहे हैं। उनकी प्रचण्ड प्रतिभा और विशाल सैन्य दल का सामना करने में बड़े बड़े महाराजा भी अक्षम हो उनके शरणागत हो गये हैं। एक ही सांस में गुप्तचर कह गया।

सुकौशल के माथे पर पसीने की बूंदें उभर आयी ! उन्होंने कहा-हमसे कितनी दूरी पर है वे?

ज्यादा दूर नहीं राजन् ! जिस तीव्र वेग से वे

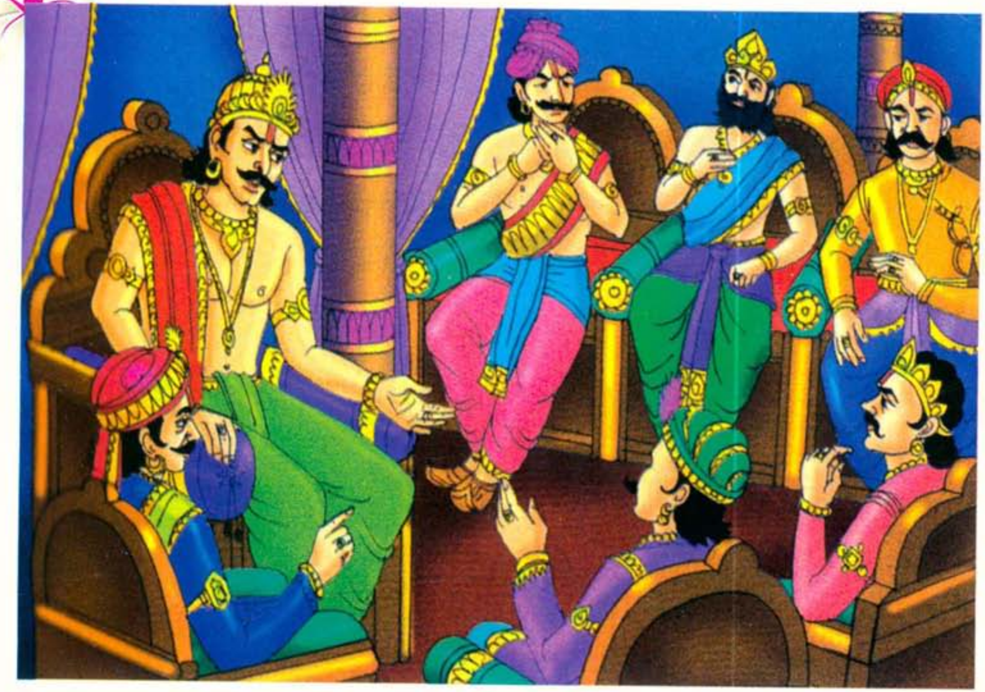

सम्राट् सुकौशल द्वारा युद्ध के संदर्भ में विचार–विमर्श

उफनती नदी की तरह कूच कर रहे हैं, उससे तो दो से तीन प्रहर में हमारी सीमाओं में प्रविष्ट होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

ओह ! इतने निकट ! तुम उनकी हर गतिविधि पर सूक्ष्म दृष्टि जमाएँ रखो, मैं मंत्रणा कक्ष में पहुँचता हूँ।

परस्पर मंत्रणा में मंत्री, सेनापति आदि का एक ही मत था कि शरण में चले जाये। सामने जायेंगे तो उस महागजराज के पाँवों तले कुचले जाएंगे। आत्मसमर्पण ही आत्म–सुरक्षा का सर्वोत्तम उपाय है पर महाराज सुकौशल को यह स्वीकार्य न था। वे युद्ध के समर्थक नहीं थे तो प्रजा और राज–सीमाओं की सुरक्षा के लिये अपने कर्त्तव्य से पीछे हटना भी उचित नहीं समझते थे। सन्धि और समर्पण में घोर कायरता ही नहीं थी, क्षत्रियोचित गौरव का भी हनन था। अन्तत: उन्होंने क्षात्रधर्म का बिगुल फूंकते हुए अपने रथ–गज–अश्व दल के साथ समराँगण की ओर प्रस्थान कर दिया।

चार रानियों के साथ सम्राट् दशरथ

नभमण्डल तलवारों की चमक से चमक उठा। भूखे भेडिये की भाँति दोनों की सेनाएँ एक-दूसरे पर टूट पड़ी। यद्यपि दशरथ के विस्तृत सैन्य दल के सम्मुख सुकौशल की सेना अत्यल्प थी, फिर भी स्वदेश के संरक्षण और उसकी आन-बान-शान के लिये मर-मिटना उनकी महान् खूबी थी। अल्प सैन्य दल....स्वल्पकाल....। ऐसी स्थिति में महासुमेरु से टकराना आसान नहीं था। कुछ ही समय में सुकौशल की सेना के पाँव उखडने लगे। यह देख महाराज का शरीर और आत्मा काँप उठी। युद्ध का निर्णायक क्षण उपस्थित हो, उससे पहले ही मंत्री और सैन्याधिपति को गुप्त संदेश देकर राजमहल की ओर लौट चले।

इधर महारानी अमृतप्रभा और पुत्री अपराजिता, दोनों कुलदेवी के कक्ष में प्रार्थना कर रही थी-देवी ! आप ही हमारे कुल-बल-धन और सम्मान संरक्षिका है। जब-जब संकट के बादल छाए, हम बाल आपकी शरण-चरण में आकर निश्िंचत हो गये। अब आपके ही हाथों में महाराज सुकौशल के प्रशासन की कुशलता है। आप चाहे तो तारे.... चाहे तो....।

महारानीजी ! महारानीजी !

'महारानी' शब्द सुनकर अमृतप्रभा जैसे बाहर के संसार में लौट आयी। दासी हाथ जोड़े कर रही थी-महाराज! युद्ध से लौट आए हैं। सुनकर जैसे अमृतप्रभा के अंग-अंग में आग लग गयी।

वह हतप्रभ हो मुख्यद्वार की ओर बढ़ती, उससे पहले ही महाराज सुकौशल महल में प्रविष्ट हो गये। अमृतप्रभा का रक्ताभ मुखमण्डल उसकी अरुचि और आक्रोश को स्पष्टत: अभिव्यक्ति दे रहा था।

राजन् ! आपका यों समरभूमि से प्रत्यावर्तित होना कुल और परम्परा के गौरव-कलश को धूलिसात करने जैसा नहीं? अमृतप्रभा जैसे गरज उठी।

महाराज सुकौशल ने अमृतप्रभा का हाथ पकड़ा और कहा-देवी ! तुम निजी कक्ष में चलो। सारी बात बताता हूँ।

अमृतप्रभा महाराज के पीछे-पीछे चल पड़ी। आसन पर बैठते हुए सुकौशल ने कहा-देवी ! मेरा मुकुट....मेरा राज्य छीना जा रहा है। ये परिवार...ये बाग-बगीचें...ये खाद्य भण्डार, सब कुछ लूट जाएगा देवी! मैं बहुत उदास और हताश हूँ। इस पराजय को कैसे झेल पाऊँगा!

पर महाराज! आप क्षत्रिय कुल में जन्मे, पले, बढे और युद्ध से भाग आए? मुझे तो आश्चर्य हो रहा है कि पीठ दिखाकर भाग आना, यों राजसम्पदा में आसक्ति जताना....क्या आपकी प्रतिष्ठा का अध:पतन नहीं है? सच्चा क्षत्रिय तो वह है, जो अपने प्राणों को प्रण की बलिवेदी पर न्यौंछावर कर देता है। खून के कतरे-कतरे को प्रतिष्ठा और राज्य के संरक्षण में बहा देता है पर संकल्प विमुख नहीं होता है। मैं तो आपसे एक ही प्रश्न पूछती है कि गरिमा पर कालिख पोतकर प्राण बचा लेने पर भी क्या आप सुकून से जी पाएंगे? कहते-कहते अमृतप्रभा के चेहरे पर क्षत्रियाणी का तेज और ओज उभर आया।

धीरज से सहज होते हुए सम्राट् सुकौशल ने कहा-तुम जैसा समझ रही हो, वैसा कुछ भी नहीं है। यदि मुझे प्राणों का मोह होता तो संभावित परिणाम जानने पर भी रणमैदान में कदम क्यों रखता? क्यों न सभी की तरह आत्म-समर्पण की सोच स्वीकार कर लेता !

एक तरफ आपका नैतिक दायित्व के तौर पर युद्ध में जाना और बीच में से वापस आकर स्वयं को निर्दोष ठहराना, मुझसे तो यह पहेली नहीं सुलझ रही।

देवी! रणभूमि के अधबीच से लोटने से तेरी मानसिकता मेरे प्रति सन्देहास्पद बन गयी है पर सच्चाई तो यह है कि यह युद्ध हमारे लिये चुनौती नहीं, आनन्द का अवसर बनकर आया है।

भयंकर युद्ध...निर्दोष-रक्त से भूमि का रंजित होना....कुशस्थलपुर का यों पराजय के कगार पर पहुँचना आनन्द का अवसर कैसे? अब तो पहेली पहले से भी अधिक पेचीदा बन गयी। कहीं महाराज विक्षिप्त तो नहीं हो गये, जो ऐसी

बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं। अमृतप्रभा और अधिक गम्भीर हो उठी।

देवी ! आनन्द के अवसर का निर्णय करने के लिये ही मैं तुम्हारे पास आया हूँ।

निर्णय ! कैसा निर्णय और कैसा अवसर ! अमृतप्रभा बोली ।

अमृते! यद्यपि अयोध्या के अधिपति महाराज दशरथ हमारे शत्रु हैं तथापि उनके प्रज्ञापूर्ण चातुर्य, शारीरिक सौष्ठव, नीतिपूर्ण युद्धपद्धति, अद्वितीय प्रतिभा कौशल से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ।

हम इन दिनों पुत्री अपराजिता के लिये योग्य वर की तलाश में थे। मैं सोचता हूँ कि अपराजिता का पुण्य-साम्राज्य स्वयं सामने से चलकर आया है। युवराज दशरथ बुद्धि और बल के खजाने हैं तो अपराजिता संस्कार, शील और सुन्दरता की प्रतिमूर्ति। दोनों की जोड़ी त्रिभुवन में प्रशंसनीय बनेगी। तुम्हारा क्या विचार है देवी ! मेरे पास समय नहीं है, शीघ्र ही निर्णय कर लो, जो करना है।

जरा चौंकती और गम्भीर होती हुए महारानी अमृतप्रभा ने कहा-देव! अपनी प्राण-प्यारी पुत्री को शत्रु के हाथों सौंपना क्या गलती नहीं होगी? क्या लोग नहीं कहेंगे कि राज्य के बदले में सम्राट् सुकौशल ने अपनी पुत्री को बेच दिया। इससे कुशस्थलपुर के पूर्वजों की गौरवपूर्ण परम्परा एवं निर्मल प्रतिष्ठा को धक्का नहीं लगेगा? कहते हुए अमृतप्रभा ने अपनी प्रश्नसूचक निगाहें महाराज के मुख पर रख दी।

देवि अमृते! यहाँ सौदे की बात थोड़े ही ना है। यह सम्बन्ध सौदा तब कहलाता, जब अपराजिता का हांथ मजबूरी से युवराज दशरथ के हाथों में देता। यह तो मेरा अपना स्वतन्त्र निर्णय है। चाहे जीत हो या हार, मैं तो उन्हें उपहार के रूप में अपराजिता को अर्पण कर रहा हूँ।

अमृतप्रभा सम्राट् सुकौशल की सुझबुझ पर फिदा हुए बिना न रही। उसने इस मधुर सम्बन्ध पर स्वीकृति की मुहर

लगा दी। एक निर्णय ने रणभूमि का वातावरण बदल दिया ! एक पल पहले जहाँ हजारों बेकसूर प्राणियों का रक्त बह रहा था, वहीं अब सैकड़ों शहनाईयों का संगीत का फूट पड़ा। युद्ध-मण्डप विवाह मण्डप में बदल गया।

युवराज दशरथ को कुशस्थलपुर की प्रजा ने बधाई की पुष्पवर्षा करते हुए बधाया। दशरथ स्वयं अपराजिता के साहचर्य की सुगंध से महक उठे। उन्होंने पट्टरानी का गरिमापूर्ण पद देकर अपने हार्दिक अपनत्व को अभिव्यक्त किया। गुणों से छलकता अपराजिता का व्यक्तित्व अयोध्या का सुन्दर सम्मान बन गया।

पक्षी की कुहुक से सुकौशल पुत्री कौशल्या अपने स्मृति-संसार से बाहर लौटी तो अपने निखरते सौन्दर्य और आभा को दर्पण में देख जैसे संकोच से शरमा गयी।

चारों तरफ हो रहा शहनाई वादन उसके कानों में मधुर रस घोलता प्रतीत हो रहा था। आज नरेश दशरथ की पट्टरानी राजमाता का दिव्य पद प्राप्त करेगी। इतने में उसे कुछ दिन पूर्व घटित घटना याद हो आयी। उसका मन जैसे विरक्त योगिनी की भाँति वैराग्य के उपवन में विचरण करने लगा-अहा! प्रसन्नता की अमी से झरती तपस्विनी काया ! आँखों में संवेग की मस्ती ! शब्दों में वैराग्य के मोती ! कोमल देह पर छलकती साधना की रश्मियाँ!!

नरेन्द्र दशरथ राज परिवार के साथ मुनीन्द्र की चर्चा-प्रशंसा सुन उनके दर्शन-लोभ का संवरण नहीं कर पाये और दर्शन के लिए प्रस्थित हुए।

प्रथम पल में ही उनका पवित्र आभामण्डल प्रभावित कर गया। वाणी में क्या जादूभरा था। प्रवचन क्या था, जैसे पीयूष का अनुपम-पान ! समस्त आवरणों को छेद-भेद कर आत्मा के हर अणु को मधुर सुवास से भर गया।

एक घटिका....दो घटिका....तीन घटिका....कब व्यतीत हुई, पता ही नहीं चला।

निर्ग्रन्थ प्रवचन का सार-संक्षेप कौशल्या के हृदय-पटल पर उभर आया।

राजन्! ये सारे भोग-उपभोग अन्ततोगत्वा दुःखकर हैं। इन मिथ्यासुखों की प्राप्ति एक भव में तो क्या, अनन्त भवों तक हो, चाहे देवेन्द्र-नागेन्द्र-नरेन्द्र के करोड़ों-अरबों-संख्य-असंख्य भव मिल जाये तब भी असंभव है।

जैसे एक प्रहार हुआ। दशरथ जाग गये भोगों की नींद से। नहीं....नहीं....! मुझे वैराग्य के उपवन में प्रवेश करना है। ये मुकुट....राजपाट....साधनों की विपुलता....आत्मसुख-संयमसुख के सम्मुख ना कुछ हैं। तुच्छ, हीन और नीरस हैं। अन्तर बदला....मन की दिशा बदली....संसार कारागृह की भाँति कचोटने लगा। तत्क्षण उन्होंने प्रव्रज्या की इच्छा अभिव्यक्त कर दी।

कौशल्या से न कुछ कहते बना, न सहते बना!

कैकयी और सुमित्रा भी जैसे किंकर्त्तव्यविमूढ बन गयी!

राजपाट का त्याग यानि राम का राज्याभिषेक !

आज वह शुभ मुहूर्त्त आ गया है।

गलियों का रंग बदल गया है।

ढोल-नगारे...तोरणद्वार...दीपमालाएँ...पुष्पवृष्टि...इत्र की सुवास...शहनाई वादन...कुंकुम का छिड़काव...! पूरी नगरी दुल्हन की तरह सज चुकी है।

सकल प्रजा हर्षित...भाव विभोर है। सूर्योदय के साथ ही विशाल जनसमूह ने राजमहल के निकटस्थ उस भव्य पाण्डाल की ओर कदम बढ़ा दिये हैं, जहाँ अयोध्या के गौरव श्रीराम का राज्याभिषेक होना है। आज एक स्वर्णिम पन्ना जुड़ रहा है रघुकुल के गरिमामय इतिहास में।

राम का राज्याभिषेक होगा और दशरथ सारे बन्धनों के पाश को तोड़ निर्बंध की ओर बढ़ चलेंगे। न केवल दशरथ

अपितु कैकयीपुत्र भरत भी। संसार के सुखों की मृग-मरीचिका से मुक्त होने को तड़फ-बिलख उठी है उनकी अन्तर-आत्मा। कैकयी महाराज दशरथ के संयम-पथ स्वीकार के आघात को तो झेल ही नहीं पायी थी कि भरत के साधना के राजपथ पर आरूढ़ होने के परिपक्व निवेदन ने दूसरा झटका दिया।

वह जानती थी, महाराज दशरथ के निर्णय को नहीं बदला जा सकता है तब फिर उनके साथ ही संन्यास के लिये उत्कंठित भरत की आत्मा को कैसे रोका जा सकेगा? वह तो मेरा प्राणाधार है। उसके बिना मैं कैसे जी पाऊँगी? भरत बिना ये भरा पूरा महल भी श्मशान जैसा लगेगा। छप्पन भोग नीरस एवं बासी लगेंगे। कोमल मखमली शय्या भी शूल की तरह चुभेगी।

नहीं....नहीं...! भरत को दीक्षा नहीं दे सकती। मेरी आँखों का तारा....मेरे हृदय का हार! मैं तुझे किसी भी कीमत पर दूर नहीं होने दूंगी। रात इन्हीं सोचों में बीत जाती। उसे न दिन में चैन था, न रात में नींद। भरत के विरह के दु:ख में भूख-प्यास भी मिट गयी।

उसकी कोमल-मातृत्व से परिपूर्ण संवेदनाएँ दु:ख और चिन्ता से टकराकर मृतप्राय: हो गयी। उसने अनेक बार स्वयं को समझाने-मनाने का यत्न भी किया। वह बखूबी जानती थी कि साधना में जो आनंद और प्रसन्नता है, उसकी इन राजमहलों, कुटुंब-कबीलों और सुविधाओं की भरमार से संत्रस्त जिन्दगी में झलक भी नहीं मिल सकती। पर मोहनीय कर्म की सघनता ने उसे भरत के प्रति सम्मोहित कर दिया कि वह भरत के बिना जीना सोच भी न सके।

अनन्तोगत्वा कैकयी ऐसा कोई अवसर ढूंढने लगी, जिससे भरत को राजप्रासाद में रहने के लिए बाध्य होना पड़े।

बहुत सोचा, विचारा, चिन्तन किया पर कोई भी ऐसा विकल्प हाथ न लगा, जो उसकी खिन्न आत्मा की उद्विग्नता मिटा सके। उदासी, खिन्नता और भरत के भावी विरह का दु:ख जहर बनकर दिलोदिमाग को जख्मी करने लगा। चिन्ता के विष ने चिन्तन, रूचि, आशा और खुशी को अत्यन्त रूग्ण बना दिया।

राज्याभिषेक के दिन ज्यों ज्यों करीब आ रहे थे, त्यों त्यों कैकयी की मनोव्यथा बढती जा रही थी। दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, सुप्रभा, श्रीराम, सभी ने कई बार उसके चिन्तित मुख और रूग्ण शरीर को देखकर प्रश्न भी किया पर कैकयी स्पष्ट शब्दों में अपनी व्यथा बता न सकी।

दासियों में एक मुँहबोली और कैकयी की मन:स्थिति को सम्यक्तया समझने वाली मंथरा नामक दासी थी। उसकी कुशाग्र बुद्धि ने महिनों तक न सुलझी व्यथा की कथा को कुछ ही पलों में मिटा दिया। उसने रानी कैकयी को महाराज दशरथ के पास धरोहर रखे वरदान को मांगने की बात याद दिलाई। सुनते ही कैकयी खुशी से नाच उठी। उसकी मनोव्यथा जैसे आधी हो गयी।

यद्यपि वह जानती थी कि राम चारों भाइयों में ज्येष्ठ ही नहीं, राजा-प्रजा में अभीष्ट भी है। योग्य, कुशल और जनप्रिय भरत भी है पर अभिषेक तो सबसे बड़े भ्राता का ही होता है, वह सर्वथा उचित और योग्य है। फिर क्या करूँ? किस मुँह से महाराज दशरथ से वचन-सम्पूर्ति के रूप में भरत के राज्याभिषेक की बात कहूँ? बहुत सोचा, उसे अपनी यह मांग अयोग्य भी लगी पर मोह राजा का काम ही यह है कि वह अकरणीय करवा देता है, करणीय से हटा देता है।

राज्याभिषेक की उषा अभी फैली ही थी कि वह पूर्व नियोजित ढंग से महाराज दशरथ के पास पहुँची। उनके पास धरोहर रखे हुए वचन का स्मरण कराते हुए कहा-राजन्! राज्याभिषेक के इस मंगलमय अवसर पर मैं आपसे एक वरदान चाहती हूँ। कैकयी ने माधुर्य के आवरण में लपेटकर कांटों भरी बात कह डाली।

यों तो महाराज दशरथ स्वयं एक कुशल प्रशासक, राजनीतिज्ञ और मनोविज्ञ थे पर आज मात खा गये। चेहरे से मन को पढ़ लेने वाले दशरथ आज कैकयी के चेहरे से उसकी मानसिक कुटिलता का यथार्थ आकलन नहीं कर पाये।

उन्होंने सहज और प्रसन्न मुद्रा में कहा-कहो कैकयी! तुम प्रदत्त-वचन की सम्पूर्ति में क्या चाहती हो? मांगो, जो चाहोगी, मिलेगा। आज मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र के राज्याभिषेक और स्वयं के अभिनिष्क्रमण की ओर बढ़ती घड़ियों में

अत्यन्त आनन्दित हूँ।

कैकयी ने भूमिका बनाते हुए कहा-महाराज! मैं जो मागूंगी, अवश्यमेव उसकी पूर्ति करोगे न? कहीं ऐसा न हो कि मेरी मांग सुनकर आप अपने वचन से मुकर जाए।

ऐसा क्यों कह रही हो कैकयी? यह दरबार सामान्य सम्राट् का नहीं, रघुकुल के महाराज दशरथ का दरबार है। रघुकुल की यह गौरवान्वित परम्परा रही है कि वह प्रदत्त वचन की सम्पूर्ति के लिये प्राणों को भी न्यौंछावर कर देता है। क्या तुम्हें अपने ही पूर्वज, रघुकुल की आन-बान और शान सम्राट् दिलीप की गौरवगाथा पता नहीं है, जो गाय की रक्षा के लिये अपना जीवन कुर्बान करने में भी नहीं हिचकिचाए थे।

फिर तो महाराज! मेरी इतनी सी ही अभिलाषा है कि राम के स्थान पर भरत का राज्याभिषेक किया जाये। महाराज दशरथ को जैसे अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हुआ।

क्या कहा तुमने कैकयी? भरत का राज्याभिषेक?

हाँ महाराज ! कैकयी पूर्ववत् सहज थी। पर दशरथ को काटो तो खून नहीं। एक बारगी तो ऐसा लगा जैसे आकाश गिर पड़ेगा या पाताल फट जाएगा अथवा दुनिया में भूकम्प आ जाएगा। अश्रुपात करते हुए दशरथ मूर्च्छित हो जमीं पर गिर पड़े।

कैकयी घबरायी! कहीं कुछ अकल्पित घटित न हो जाए। दो मिनट ही बीत होंगे कि दशरथ की मूर्च्छा भंग हुई।

दशरथ की आँखें सावन-भादों के मेघ की तरह बरस रही थी। न कहा जा रहा था, न सहा जा रहा था। मन अत्यन्त व्यथित था। आखिर साहस जुटाकर बोले-कैकयी! मांग के भी तूंने क्या मांगा। नैतिकता विहीन मांग को भी मैं अवश्यमेव पूर्ण करूंगा क्योंकि मुझे रघुवंश के गौरव को और अधिक यशस्वी बनाना है और अपने प्रदत्त वचन पर खरा जो उतरना है। जाओ, कैकयी जाओ! राज्याभिषेक राम का नहीं, भरत का होगा।

कौशल्या महारानी है फिर भी राजप्रासाद में घटित इस घटना से सर्वथा अनजान है। वह तो उस पावन क्षण के इन्तजार में है, जब उसका पुत्र राम अयोध्या के सर्वोत्तम पद पर अभिषिक्त होगा और वह स्वयं 'राजमाता' की महान् उपाधि से अलंकृत होगी। पर विधाता ने कुछ और ही विधान लिखा है। व्यक्ति सोचता क्या है, और क्षणान्तर में क्या हो जाता है!

कितनी कितनी मधुर कल्पनाओं में खोयी महारानी कौशल्या यह भी नहीं जान पायी कि उसका राम स्वयं उसके कक्ष में कब का प्रविष्ट हो चुका है।

'माँ' !!

अरे ! यहाँ राम के शब्दों की मिठास कहाँ से आयी।

आँखें खोली तो राम उसके सामने था।

वनवास की आज्ञा प्राप्त करते मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम

चरण स्पर्श कर राम कौशल्या के चरणों में बैठ गया।

पुत्र! तूं कब आया?

माँ! गया ही कब था! मैं तेरे रोम-रोम में बसा हुआ हूँ। भला कोई लहर सागर से, सुवास चन्दन से और धड़कन हृदय से अलग हो सकती है!

छोड़ इस दार्शनिकता को। अरे! अभी तक तूं ऐसी सामान्य वेषभूषा में ही है। असामान्य पद का उत्तराधिकारी और सामान्य परिधान! क्या तुझे पता नहीं, आज तेरा राज्याभिषेक हो रहा है।

आज ही क्या माँ! मैं तो प्रतिपल अभिषिक्त अभिसिंचित होता हूँ तुम्हारी और बापूजी की अमीदृष्टि से। पल-पल तुम अपने स्नेह, अपनत्व, प्रेम, आशा, मधुरता, दिव्यता की निर्मल वर्षा में मेरा अभिषेक करती रहती हो।

तेरी माँ नहीं समझ सकती दर्शन की तेरी जटिल शब्दावलियों को। चल! अब जल्दी से सजकर तैयार हो जा।

माँ! तैयार होने की कोई जरूरत नहीं है।

भला क्यों नहीं? यह अभिषेक केवल तुम्हारा नहीं, सम्पूर्ण सूर्यवंश की स्वर्णिम परम्परा का है।

पर माँ ! राज्याभिषेक का निर्णय बदल चुका है।

मैं कुछ समझी नहीं।

मैं बापूजी के कक्ष से ही आ रहा हूँ। उनके चरणों में मैंने वन्दना के पुष्प अर्पण किये पर उनकी वात्सल्य दृष्टि की वर्षा में भीग नहीं पाया। मैंने पूछा-बापूजी ! क्या आप इस बाल राम से रूष्ट है। उन्होंने मेरी ओर नयन उठाकर देखा तो मैं हक्का-बक्का रह गया। उनकी आँखें आँसूओं से भरी हुई थी। सुनकर कौशल्या हतप्रभ रह गयी।

फिर बेटा !

माँ ! मैंने बापूजी से पूछा-ये आँसू कैसे? आनंद के पलों में ये रूदन कैसा?

वे तीव्र रूदन करते हुए बोले-बेटा! मैंने अपने ही हाथों अपने पाँवों पर कुठाराघात किया है। पुत्र! कैकयी के पास मेरा एक वचन धरोहर रखा हुआ था। आज उसने उस वचन की सम्पूर्ति में भरत के राज्याभिषेक की माँग की है।

एक तरफ अधिकार और औचित्य का विवेक था तो दूसरी ओर वचन प्रतिबद्धता की समस्या थी। एक तरफ खाई....दूसरी ओर कुआँ। मैं क्या करता पुत्र! मैंने भरत के राज्याभिषेक की स्वीकृति दे दी।

कौशल्या के नयन अश्रुओं से आर्द्र हो गये। उसे सपने में भी अनुमान नहीं था कि मुँह तक पहुँचा कौर भाग्य इस तरह वापस छीन लेगा।

पुत्र ! तूंने क्या कहा।

माते! मैं और भरत अलग अलग थोड़े ही न है। वह मेरा अपना अनुज है। राज्याभिषेक उसका हो या मेरा, इससे मुझे क्या फर्क पड़ता है। आप खुशी-खुशी भरत का अभिषेक कीजिये।

मेरा और बापूजी का वार्तालाप चल ही रहा था कि भरत भी आ गया।

वह माँ कैकयी से सकल वृत्तान्त जान चुका था। इसीलिये वह बापूजी के कक्ष की ओर दौड़ा-दौड़ा आया था।

पिताश्री! मैं अपने राज्याभिषेक के लिये कत्तई तैयार नहीं हूँ। राज्याभिषेक होगा, और वह भी बड़े भैया का।

पुत्र भरत! तेरे लिये तेरा राज्याभिषेक भले ही महत्त्वपूर्ण न हो पर मेरे लिये जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है। प्रदत्त वचन से विपरीत यदि मैं राम का अभिषेक करता हूँ तो इतिहास के कटघरे में मुझे अपराधी की भाँति खड़ा होना पड़ेगा। तुम ही कहो, क्या आने वाले पीढी मुझे चंचलचेता और वचन भंग-दोषी के रूप में रेखांकित नहीं करेगी?

पर पिताजी! बड़े के रहते छोटा भाई पदाभिषिक्त हो, यह अशक्य है। क्या आने वाली पीढ़ी मुझे लोभी के रूप में शब्दांकित नहीं करेगी। संसार यही तो कहेगा कि लालची भरत के राजपाट के लोभ ने सारे परिवार को संकट में डाल

दिया। नहीं....नहीं....! भरत भले ही इतना शिष्ट और योग्य न हो कि सूर्यवंश के उज्ज्वल शिखर पर यश-कलश चढा सके पर इतना धृष्ट और अशिष्ट भी नहीं है कि रघुकुल की महिमा को धूमिल कर दे।

भ्रात भरत! तुम व्यर्थ ही चिन्तित हो रहे हो। मेरे रहते यदि तुम्हें राज्याभिषेक अस्वीकार्य है तो महल का त्याग करके मेरा वनवास स्वीकार कर लेना ही श्रेष्ठ है।

राम के वनवास की बात सुनकर क्षणार्ध में माता कौशल्या की आँखें भर आयी। एक पल तो पुत्र-विरह की कल्पना से कांप उठी, तुरन्त अपने हृदय को वज्र की तरह कठोर किया। उसने हर गम को खुशी खुशी झेलने का मानस बना लिया। वास्तव में योगी राम की जन्मदात्री कोई महायोगिनी ही हो सकती है।

पुत्र! मुझे तुमसे यही अपेक्षा थी। मेरी कोंख से जन्म लेकर तूंने मुझे ही नहीं, सम्पूर्ण सूर्यवंश को गौरवान्वित किया है। पितृ वचन के लिये राज्याभिषेक-त्याग और वनवास- स्वीकार का यह अनूठा कदम राम का ही नहीं, सम्पूर्ण रघुकुल का अनूठा दस्तावेज बन गया है। तूंने एक बार फिर अपनी निर्लिप्तता और श्रेष्ठता अंकित की है।

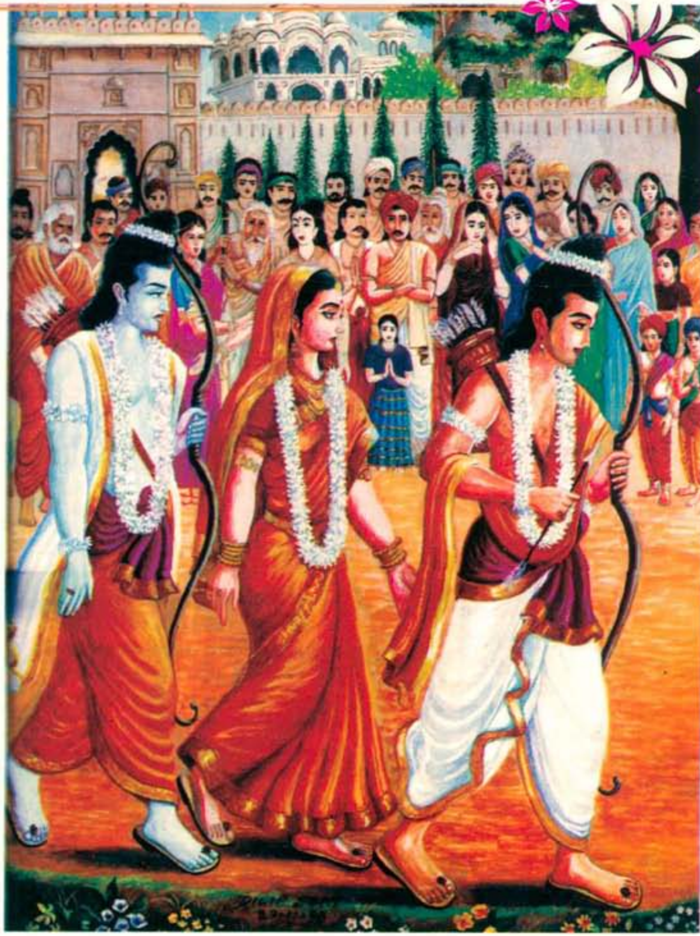

राजसुखों का त्याग और वनवासार्थ प्रस्थान

कौशल्या विरक्त महासती की तरह एक सांस में ही कह गयी।

माँ! यह सब तुम्हारा ही दिया हुआ है। मातृ-पितृ भक्ति का यह एक छोटा-सा नमूना है। आपके उपकारों के बदले यदि अपनी चमड़ी के जूते बनाकर पहनाऊँ अथवा कंधों पर बिठाकर तीर्थयात्रा करवाऊं तो भी उऋण थोड़े ही ना हो सकूंगा।

विदायी के क्षणों में वह इतना ही कह पायी-शिवास्ते पंथानः सन्तु ।

देखते-देखते राम के कदम वन की ओर बढ़ गये। लक्ष्मण और सीता ने राम के चरणों का अनुगमन किया।

भरत के राज्याभिषेक के पश्चात् महाराज दशरथ पूर्व निर्णयानुसार प्रव्रजित हुए। कौशल्या ने भी महापथ की पथिक बनना चाहा। पर भरत ने उन्हें रोका-माँ! तीव्र आघात के इन क्षणों में तुम नहीं जानती कि मैं अन्तर से कितना व्यथित-पीड़ित हूँ। इस समय मेरा मन जब करूण रूदन कर रहा है, जब तुम्हारे संबल और स्नेह की मुझे परमावश्यकता है, तब तुम ही यों निराधार करके जा रही हो।

और फिर इससे मैं लोक में निंदा और अपशय का पात्र नहीं बन जाऊंगा। लोग नहीं कहेंगे कि पिता, माता, भाई, भाभी, सभी को घर से बहिष्कृत करके भरत स्वयं अयोध्या का अधिपति बन बैठा है।

माते! तुम तो मेरी आदर्श हो! मैं जानता हूँ, माँ कैकयी ने तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया है पर तुम तो क्षमा और समता की प्रतिमा हो। तुममें हमने सदा से त्याग की खुश्बू देखी है।

पुत्र भरत! मेरा संयम का मनोभाव अन्तर्प्रेरित है। उसमें कैकयी का व्यवहार तनिक भी कारणभूत नहीं है। घटित इस सारे घटनाक्रम में मैं किसी को भी उत्तरदायी नहीं ठहराती। सारा खेल नियति का है। अपराधी न तो कैकयी है, न तूं। तूं स्वस्थ मन से नीतिपूर्वक राज्य कर और मुझे संयम की अनुमति दे।

नहीं....नहीं....माँ! तुम्हारा विरह मेरे लिये असह्य है। क्या मैं तुम्हारा पुत्र नहीं। क्या तुम्हें मुझ पर प्रेम नहीं। मेरी

भावना की खातिर ही रूक जाओ माँ। कहते हुए भरत कौशल्या के चरणों में गिर पड़ा। आँखें सजल हो गयी।

सहसा कौशल्या की आँखें बन्द हो गयी। पल भर सोचने के बाद नयन खुले-भरत! मैं तुझमें और राम में कोई भेद नहीं देखती। मेरे लिये जैसा राम है, वैसा ही तूं है। आज तक मैंने राम की किसी भावना को नहीं तोड़ा, फिर तेरा दिल कैसे तोड़ सकती हूँ।

राम के चौदह वर्ष के वनवास से पुनरागमन तक मैं अपना निर्णय स्थगित करती हूँ। मैं घर में ही संन्यास को जीने की कोशिश करूँगी।

कौशल्या के परिवर्तित निर्णय ने एक बार फिर भरत को चमत्कृत कर दिया। कैसी योगिनी है मेरी माँ कौशल्या जो संसार में ही सन्यस्त और घर में ही अणगार बन जाती है। भरत के श्रद्धाश्रुओं से कौशल्या के चरणों का अभिषेक हो गया।

वनवास की अवधिपूर्ण होने पर राम का अयोध्या में पुनरागमन होता है। राम का राज्याभिषेक होता है। कौशल्या को पाकर राजमाता का पद धन-धन्य बन जाता है।

वैराग्यवती कौशल्या को महलों के सुखों में कोई रस नहीं रहता है! अन्त में दीक्षित होकर वह स्वर्गगामिनी हो जाती है।

अपराजिता निश्चित ही अपराजिता है। कभी पिता के पराजय का भार अयोध्या की महारानी बनकर उतारती है तो कभी राम को वनवास की आज्ञा दे स्वयं महलों में वनवासिनी बन जाती है। कभी प्रेम, स्नेह और उदारता से कैकयी के मन को जीत लेती है तो कभी अपनी त्याग निष्ठा और निस्पृहवृत्ति से भरत के मन में वह स्थान बना लेती है, जो स्थान जन्म देकर भी कैकयी नहीं बना पाती है।

साहस और समता, संकल्प और साधना की अप्रतिममूर्ति कौशल्या का नाम इतिहास के पन्नों पर आज भी अपनी सम्पूर्ण चमक-दमक के साथ अंकित है।

● पिताश्री !
हम दोनों एक-दूसरे के सहारे एक तो क्या, हजार जिन्दगियाँ बीताने को तैयार हैं पर एक-दूसरे से जुदा होकर एक वर्ष....एक महिना....एक दिन तो क्या एक पल भी नहीं जी सकते।

● आप क्या कह रहे हो भैया ! क्या भाई-बहिन के पवित्र संबंध को भूल गये जो 'प्रिये' कहकर सम्बोधित कर रहे हो।

● नरक के असह्य दुःखों की परम्परा और स्वर्गीय सुखों की नश्वरता का चिन्तन कर पुष्पचूला गृह में संन्यासिनी बन गयी। उसकी रातें ध्यान व कायोत्सर्ग में बीतती और दिन सत्संग व स्वाध्याय में।

सेवा और संयम की प्रेरणा

महासती पुष्पचूला

महासती पुष्पचूला

पुष्पचूला और पुष्पचूल हमउम्र सखाओं के साथ क्रीड़ांगन में उपस्थित थे। आँख मिचौली के खेल में आज उन्हें बड़ा ही रस आ रहा था पर अचानक उनके आनंद के शीशे पर जैसे दु:ख के व्रज का प्रहार हुआ और खुशियों के कांच टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़े।

हुआ यों कि आँख मिचौली के खेल में ध्यान नहीं रहा और पुष्पचूला के पाँव में एक तीक्ष्ण कांटा चुभ गया। यद्यपि वह सर्वदा पदस्त्राण धारण करके ही क्रीड़ांगन में उपस्थित होती थी पर आज जल्दबाजी में नग्न पाँव ही पहुँची थी।

राजकुमारी के पाँव में काँटें का चुभना अपने आप में एक आश्चर्य तो नहीं था पर अघटित प्रसंग जरूर था।

प्रिय भगिनी के मुख से चीत्कार सुनकर पुष्पचूल नंगे पाँव दौड़ आया। सारे सखा इर्द-गिर्द खड़े हो गये। पुष्पचूल के हृदय में पीड़ा का पार नहीं था।

कोमलांगी भगिनी का दु:ख उससे देखा नहीं जा रहा था। शीघ्र ही वैद्योपचार किया गया। शल्योद्धार से ज्योंहि खून का फव्वारा फूट पड़ा, त्योंहि पुष्पचूल की आँखों से आँसूओं की धारा बह चली।

पुष्पचूला और पूष्पचूल यानि कि दो तन और एक मन। दो हृदय और एक विचार। फूल से यदि खुश्बू अलग हो... .नदी से यदि धारा अलग हो तो पुष्पचूल और पुष्पचूला एक दूसरे से अलग हो।

एक की आँख से आँसू निकलते तो दूसरे का दिल रोता। एक को चोट लगती तो दूसरे को दर्द होता।

ये दोनों पुत्र व पुत्री थे पुष्पभद्र नगर के राजा पुष्पकेतु एवं महारानी पुष्पावती के। इन दोनों पर राजा-रानी का

अथाह प्रेम था।

एकदा चारों उद्यान में उपस्थित थे। पुष्पचूला ने पूछा- पिताश्री! आपकी आँखों की चमक कुछ दिनों से फीकी फीकी नजर आ रही है। क्या आपको कोई चिन्ता सता रही है?

राजा के प्रस्ताव से असहमत महारानी

हाँ पुत्री ! चिन्ता तो है ही। यूं तो राज्य में कहीं कोई आतंक का वातावरण नहीं है, न शत्रु का भय है। धरती भी अन्नदेवी बनकर भरपूर अन्नदान कर रही है। यशोपताका चारों दिशाओं में लहरा रही है। सोच रहा हूँ कि तेरी उम्र अब यौवन में प्रविष्ट हो चुकी है। तेरे हाथ कैसे पीले करूँ, यही मेरी चिन्ता का कारण है।

पुष्पचूला सविस्मित हो बोली-पिताजी! आप ये क्या कह रहे हैं? मुझे डोली में बिठाने का अर्थ है-हृदय को धड़कन से अलग कर लेना। क्या आपने मुझमें और भैया पुष्पचूल में प्रकृति प्रदत्त भेद के अतिरिक्त कोई अन्तर देखा है?

पुष्पावती बीच में मुखर हुई-पुष्पे! तूं सच कह रही है। तुम दोनों जन्मना अभिन्न

रहे हो। स्तनपान करना, हँसना-रोना, खाना-पीना, सोना-जागना, तुम दोनों की हर प्रवृत्ति एक नदी की दो धारा के रूप में देखी है। यहाँ तक कि भूल से अथवा लाड दुलार के लिये कोई तुम दोनों को अलग कर लेता तो तुम दोनों रो-रोकर आकाश-पाताल एक कर देते।

वस्तुत: तेरे पिताजी को चिन्ता वर-वरण की नहीं, तुम दोनों को अलग-अलग कैसे करूँ, इसी संदर्भ में है।

तो फिर आप हमें क्यों अलग कर रहे हैं। आप जानते हैं कि चाँद से चाँदनी अलग हो तो पुष्पचूल से पुष्पचूला अलग हो! हम चाहते हैं कि हम ता-जिन्दगी इसी प्रकार स्नेह के धागे में बंधे रहे।

पुष्पकेतु पुन: मुखर हुए-पर मेरे लाडलों! समाज के कुछ आदर्श, नियम और मर्यादाएँ होती हैं। विवाह के बिना जीवन-निर्वाह शक्य नहीं है। यौवन की तरंगे युवानी के समन्दर में उठे बिना नहीं रहती। पुष्पावती बोली-हाँ बेटी! तेरे पिताजी ठीक कह रहे हैं।

पुष्पचूला बोली-पिताश्री! दो दशक जितने दीर्घकाल से तक आप हमारे जीवन को देख रहे हैं। फिर भी आज अनजान बन रहे हैं। क्या हमारी नि:स्वार्थ प्रीति से आप अनभिज्ञ हैं? हम दोनों एक दूसरे के सहारे एक तो क्या हजार जिन्दगियाँ बीताने को तैयार हैं पर एक-दूसरे से जुदा होकर हम एक वर्ष....एक महिना....एक घटिका तो क्या एक पल भी जीने के लिये तैयार नहीं है।

हाँ! पिताजी ! हमको अलग करने की बात आप सपने में भी मत सोचना। नहीं तो विरहाग्नि में जल-जलकर हम प्राण छोड़ देंगे। पुष्पचूल ने पुष्पचूला के स्वर में अपने स्वर मिला दिये।

इतने में मित्रों की टोली सामने थी-चलो! चलो! खेलने का समय हो गया है। पुष्पचूला और पुष्पचूल क्रीडांगन की ओर बढ़ गये।

हाथ से हाथ मिलाकर जाती भाई-बहिन की अपूर्व जोड़ी को देखकर पुष्पावती बोली-राजन्! कितना प्रेम है इन

दोनों में। निश्चय ही पिछले अनेक जन्मों की परस्पर प्रीति को वर्धमान करते हुए हमारे गृहाँगन को महकाने आये हैं।

इनकी प्रीति आश्चर्यकारी है। इसमें न स्वार्थ की दुर्गंध है, न लोभ की आकांक्षा। एक दूसरे के सुख-दु:ख में सुखी-दु:खी रहने वाले इन दोनों की जिन्दगी उस विरक्त योगिनी के समान है, जिसके हृदय में काम-विकार पैदा नहीं होता। महलों में भी वनवासी जैसा संन्यासी जीवन जी रहे हैं। धन्य है इनकी निर्विकार जीवन शैली को।

राजा के समक्ष एक भारी समस्या थी-पुष्पचूल और पुष्पचूला का विवाह किस प्रकार सम्पन्न करें। उन्हें अलग करना सम्भव नहीं है तो अविवाहित रखना भी उचित नहीं है।

राजा के मन में आया-क्यों न इन दोनों का परस्पर विवाह कर दिया जाये। यह बात रानी के समक्ष प्रस्तुत की तो रानी आश्चर्यपूर्वक बोली-हृदयनाथ! आप ये क्या सोच रहे हैं? भाई-बहिन के पवित्र बन्धन को विवाह के धरातल पर खड़ा करना न केवल धर्म की दृष्टि से अनुचित है अपितु व्यवहारिक तौर पर भी सर्वथा हेय है। क्या आप प्रजाजनों की प्रक्रिया को झेल पायेंगे? यदि विद्रोह के स्वर बुलन्द हुए तो क्या करेंगे? सोच के गवाक्ष से भविष्य की ओर झांकती हुई पुष्पावती बोली।

यदि प्रजा का समर्थन प्राप्त हो गया तो? राजा बोले। रानी मौन थी और मौन में अस्वीकृति झलक रही थी।

पूरे शहर में उद्घोषणा हो गयी कि समस्त प्रजाजनों को राजा ने सभा में विशिष्ट कारण से आमंत्रित किया है।

विशाल जनसभा का प्रांगण राजा के आने से पहले भर चुका था। पुष्पभद्र नगर की यह अपने आप में विशिष्टता कहे या आपसी प्रेम और समर्पण कहे, अपने आप में एक मिशाल थी। प्रजा राजा में भगवान को देखती थी और राजा प्रजा में माता-पिता की आदर्श छवि देखता था।

सभा को सम्बोधित करते हुए पुष्पकेतु बोले-मेरे प्रिय प्रजाजनों! आज का यह हार्दिक आमंत्रण किसी विशेष प्रश्न को लेकर दिया गया है। मैं आपसे एक प्रश्न करूँगा, आपको उसका सही-सही जवाब देना है। सहमति प्राप्त

करने के लिये राजा ने कहा-क्या आप मेरे प्रश्न का उचित उत्तर देंगे?

चारों ओर से एक ही आवाज आयी-राजन् ! आपके प्रश्न का हम सही-सही उत्तर देंगे।

राजा ने पूछा-इस राज्य की हर चीज पर अधिकार किसका है?

आपका, राजन् ! आपका ।

तो क्या मैं उसका मनचाहा उपयोग कर सकता हूँ?

निस्संकोच कर सकते हैं। इसमें पूछने जैसी बात ही क्या है?

तो फिर मेरे प्रिय प्रजाजनों ! मैंने अपने पुत्र पुष्पचूल और पुत्री पुष्पचूला का परस्पर विवाह करने का निर्णय कर लिया है। सुनकर जैसे सभा विस्मित रह गयी।

यह कैसे संभव होगा राजन् ! सभा में प्रश्न तैरने लगा। सभी एक-दूसरे की बगले झांकने लगे।

अरे! तुम सभी को पता ही होगा कि ऋषभदेव से पहले युगलिक परम्परा चलती थी, तब एक ही माँ की कुक्षि से जन्म लेने वाले भाई-बहिन पति-पत्नी बन जाते थे अतः पुष्पचूल और पुष्पचूला का परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध करने में कोई भी आपत्ति नहीं हो सकती। क्या आप सभी मेरे विचार से सहमत है?

राजा के विरूद्ध बोलने की हिम्मत कोई कैसे करता? सभी ने एक ही बात कही-यद्यपि यह सम्बन्ध अनुचित है तथापि आप करना चाहे, वह करें, इसमें हमें कोई एतराज नहीं है।

प्रजा के समर्थन ने पुष्पकेतु को उत्साह से भर दिया। महारानी पुष्पावती का कड़ा विरोध होने पर भी वे भाई-बहिन को पति-पत्नी के बंधन में बांधने के निर्णय पर अडिग रहे।

संसार की इस स्वार्थ दशा से महारानी का मन विरक्ति की ओर मुड़ गया। अनासक्ति की फसल उनके जीवन में

लहलहा उठी। वह महलों में जैसे त्याग की साधना साधने लगी। उसे सारे भोग झूठे नजर आते, सुख बुलबुले के समान क्षणिक दिखते। वह यहाँ तक विरक्त हुई कि यदा-कदा पुष्पचूला को भी समझाती-पुष्पचूला! संसार के रंगमंच पर अनन्तकाल से जन्म-मृत्यु का खेल चल रहा है। एक ही राग की पुनरावृत्ति है पर इससे जीव उबता नहीं क्योंकि भोगों में उसे आनंद आता है।

पुष्पचूला ! घर में रहकर मैंने आंशिक त्याग व संयम साधना से जिस आत्मतोष का अनुभव किया है, वह अलौकिक व शब्दातीत है। अब मैं शीघ्र ही मुनिवेश धारण कर सम्पूर्ण संयम के मधुर रस का आस्वादन करना चाहती हूँ।

पुष्पचूला व पुष्पकेतु के मन को तीव्र आघात लगा पर राजा के चित्त को मोड़ने का साहस उनमें नहीं था। पुष्पावती दीक्षित हुई। संयम साधना के द्वारा जीवन को सफल बनाती हुई देवलोक सिधार गयी। कुछ वर्षों के बाद राजा भी स्वर्गवासी हो गये।

मिलन की प्रथम यामिनी ! यह यामिनी हर पति-पत्नी के लिये उमंग और मधुर कल्पनाओं से भरी होती है, बाद का जीवन भले ही परेशानियों का पर्याय बन जाय।

पुष्पचूल का मन जहाँ उमंगों से भरा था, वहीं पुष्पचूला इस असामाजिक सम्बन्ध से खिन्न और उदास थी।

पुष्पचूल ने कहा-बहिना....! दूसरे पल ख्याल आया कि अब रिश्तों के नाम बदल चुके हैं। उसने कहा-प्रिये....! सुनकर पुष्पचूला चौंकी।

उसने कहा-क्या कह रहे हो भैया! आप भी भाई-बहिन के पवित्र सम्बन्ध को भूल गये, जो 'प्रिये' कहकर सम्बोधित कर रह हो? सुनकर पुष्पचूल की आत्मा को धक्का लगा।

वह बोला-यदि तुझे यह सम्बन्ध अस्वीकृत था तो कहा क्यों नहीं?

भैया ! यदि मैं शादी किसी ओर से करती तो मुझे अपना दिल उसे देना ही पड़ता। उसे दिल देने की बजाय यदि तुझे दिल दे दिया तो इसमें बुराई क्या है? मेरा तो मानना है कि हम भाई-बहिन के पवित्र सम्बन्ध को तुच्छ शारीरिक सुख के लिये न भूला दे, न बेच दे। अपितु उस सम्बन्ध को जिन्दगी भर निभाते हुए चले।

आत्मा से आत्मा के तार जुड़े। नि:स्वार्थ और निर्मल मैत्री की सरिता प्रवाहित हो उठी।

पुष्पचूल ने कहा-तूं और तेरे विचार कितने महान् हैं। आज तूंने मुझे गलती के गर्त में गिरने से उबार लिया। निश्चित ही तेरी अलौकिक भावनाएँ अभिनंदनीय हैं।

तो क्या आप मेरे विचारों से सहमत हैं? पुष्पचूला ने पूछा।

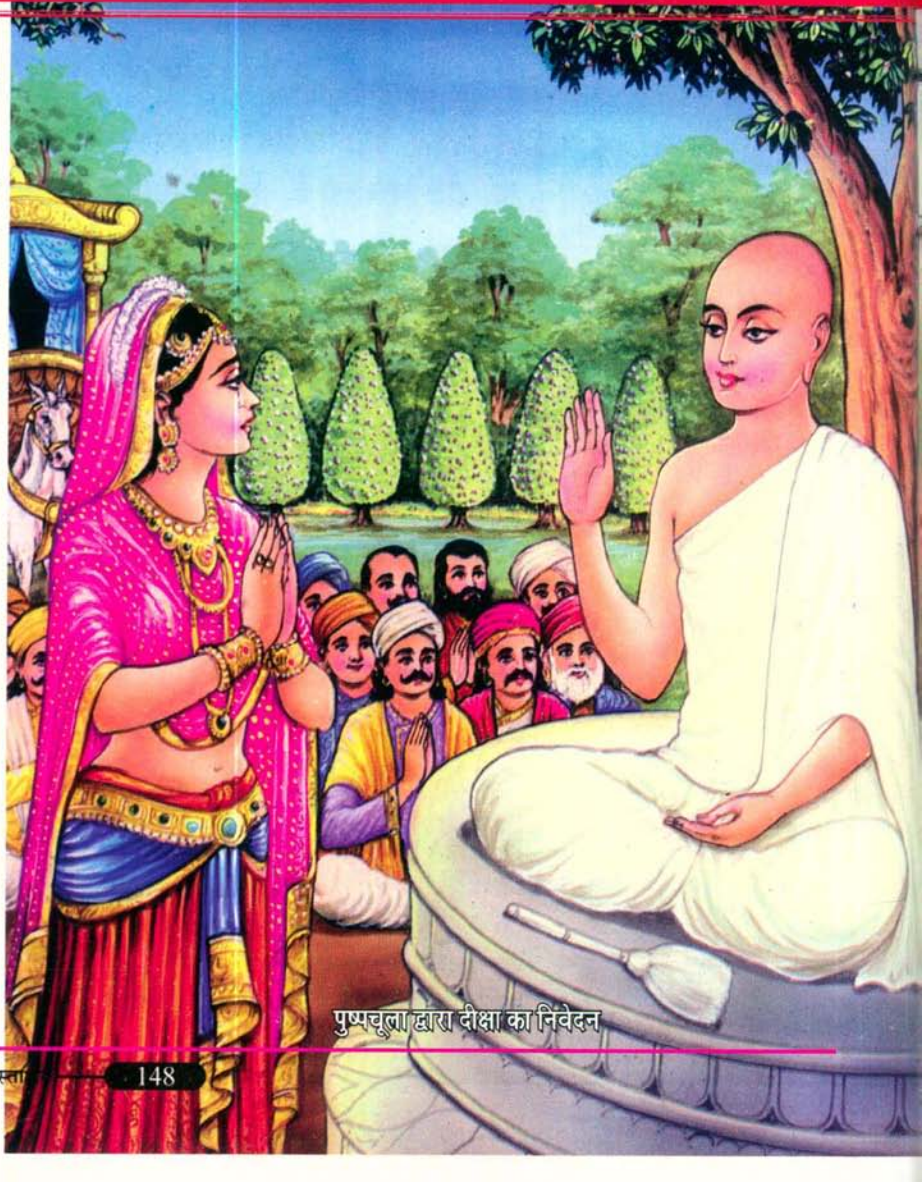

पुष्पचूला द्वारा दीक्षा का निवेदन

बिल्कुल! अब से हम व्यवहारिक तौर पर पति-पत्नी के सम्बन्ध से भले ही पुकारे जाये पर हृदय में जन्म-जात जो निर्मल-पवित्र अनुराग है, उसे आजीवन निभाते रहेंगे।

इधर देवलोक में उसकी माता पुष्पावती ने पुष्पचूला को स्वप्न में प्रतिबोध देकर स्वर्ग और नरक का वर्णन सुनाया और अर्णिकापुत्राचार्य के सान्निध्य को प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

पुष्पचूला अर्णिकापुत्राचार्य के श्रीमुख से स्वर्ग व नरक का स्वप्नदृष्ट के समान वर्णन सुनकर प्रतिबुद्ध हुई।

नरक के असह्य दु:खों की परम्परा और स्वर्गीय सुखों की नश्वरता ने पुष्पचूला की मोहनिद्रा उड़ा दी। वह गृह में गृहवासिनी न होकर संन्यासिनी बन गयी। उसकी रातें ध्यान-कायोत्सर्ग में बीतती और दिन स्वाध्याय और सत्संग में। खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने में उसकी कोई रूचि नहीं रही।

पुष्पचूल ने कहा-प्रिय बहिना ! क्या बात है? तुम्हारे मन में कोई पीड़ा है या किसी सामग्री की कमी है, जो तुम्हारी सुनहरी मुस्कान अदृश्य हो गयी।

भैया ! प्रव्रज्या का पावन पंथ मेरा इन्तजार कर रहा है। पुकार रही है साधना की सुरीली स्वरलहरियाँ। मैं भी मातुश्री के मार्ग का अनुसरण करना चाहती हूँ।

पर तुमने तो जीवन भर साथ निभाने का वादा किया था। क्या तुम मुझसे इतनी अनासक्त हो गयी कि सदा के लिये छोड़ने का मानस बना बैठी। कहते-कहते पुष्पचूल का कंठ अवरूद्ध हो गया।

भैया ! मैं आपके प्रेम से अभिभूत हूँ पर स्नेह के बंधन तोड़े बिना मुक्ति का शाश्वत सुख कहाँ?

पुष्पचूल ने बहुत समझाया-मनाया-रिझाया पर पुष्पचूला का संकल्प अटूट था। आखिर वह अपने लक्ष्य में सफल हो गयी। संयम का चिन्तामणि पाकर कृतकृत्य हो गयी। अर्णिकापुत्राचार्य की निश्रा में संयम सुख में रमने लगी। एकदा जब अकाल पड़ा तब अर्णिकापुत्राचार्य ने अन्य शिष्यों को देशान्तर विहार करवा दिया पर वृद्धत्व के कारण

स्वयं विहार नहीं पाये।

स्थिरवास में साध्वी पुष्पचूला अपने उपकारी गुरु महाराज अर्णिकापुत्राचार्य की सादर सेवा करने लगी। वेयावच्च में उसका अद्भुत रस था। एक भी क्षण का प्रमाद किये बिना वह सेवा में पहुँच जाती।

गोचरी, अन्न-जल लाना, संथारा बिछाना, प्रतिलेखन करना आदि कार्य उसके नित्य वेयावच्च-तप में शामिल थे।

परमात्मा के इस दिव्य तप का अनुमोदन करते करते उसे केवलज्ञान हो गया, फिर भी उसने सेवा से मुँह नहीं मोड़ा।

एक दिन घटना यों बनी कि पुष्पचूला भिक्षाचर्या के लिये गयी पर बाद में बरसात आ गयी।

बरसात के रूकने पर वह गोचरी लेकर आचार्य भगवंत की सेवा में पहुँची।

आचार्य प्रवर ने पूछा-अरे पुष्पचूले! तुझे संयम का बोध है कि नहीं? बरसात में गोचरी ले आयी। जब चारों तरफ पानी बिखरा पड़ा है और पानी की प्रत्येक बूंद में असंख्य जीव हैं, यह सब जानने पर भी तूं उन पर पाँव धर आयी। ओह! कितनी विराधना की। उसका तुझे प्रायश्चित्त लेना होगा।

पुष्पचूला ने विनम्र होकर कहा-गुरुदेव! प्रायश्चित्त लेने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैंने सचित्त जल का स्पर्श तक नहीं किया।

पुष्पचूले ! तूं तो ऐसे कह रही है, जैसे तुझे केवलज्ञान हो गया है अन्यथा पानी कहाँ सचित्त है और कहाँ अचित्त है, इसका तुझे बोध कैसे हो सकता है? पुष्पचूला के कथन से खींझकर आचार्यश्री ने कटाक्ष की भाषा में पूछा।

स्वीकार भाषा में पुष्पचूला मुखर हुई-हाँ गुरुदेव! मुझे केवलज्ञान हो गया है। अब सूक्ष्म-बादर का कोई भेद नहीं रहा।

केवलज्ञानऽऽऽ ! आचार्यश्री का मुँह खुला का खुला रह गया।

हाँ ! यह सब आपकी कृपा का ही परिणाम है।

ओह ! मैंने केवलज्ञान और केवलज्ञानी की आशातना कर डाली। ओह! चेला शक्कर हो गया और गुरु गुड़ ही रह गये।

भगवती ! मुझे क्षमा कर दीजिये। क्रोध में मैं न जाने क्या क्या कह बैठा!

तत्क्षण वार्तालाप को मोड़ते हुए अर्णिकापुत्राचार्य बोले-भगवती ! आप त्रिकालज्ञ है। मेरी भावी आप से अनभिज्ञ नहीं है। मेरे मन में एक प्रश्न है कि मैं चरम शरीरी हूँ या अचरम शरीरी?

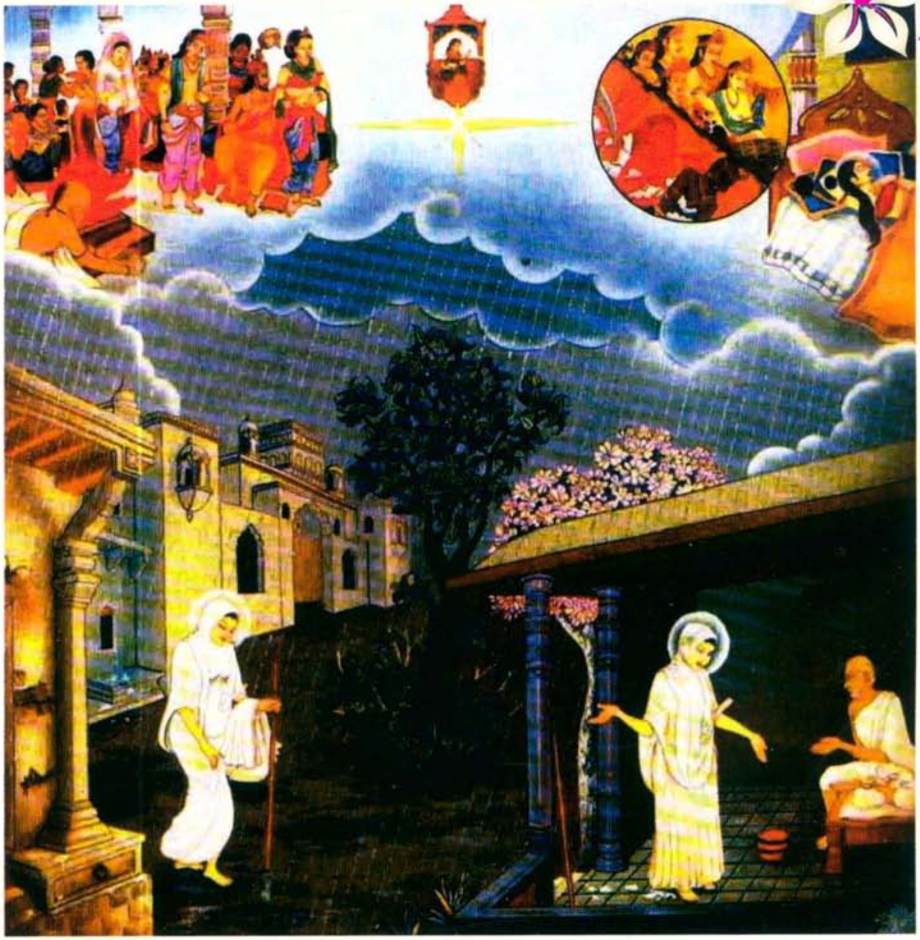

आचार्य प्रवर ! आप चरम शरीरी हैं।

तो प्रभो! मुझे केवलज्ञान कब होगा?

गंगा नदी पार करते समय।

तत्क्षण आचार्यश्री गंगा नदी पार करने के लिये बढे और नौका में सवार हुए। ऐसे समय एक मिथ्यात्वी व्यंतरी प्रकट हुई-ए ढोंगी आचार्य! इस ढोंग भरे साधु जीवन को छोड़ और मेरा कहना मान, अन्यथा मैं तुम्हें जिन्दा नहीं छोड़ूंगी। भयंकर उपसर्ग सहने होंगे।

आचार्यश्री के रोम-रोम मे अर्हत् प्रवचन के प्रति विशुद्ध श्रद्धा थी। वे गरजते हुए बोले-ए व्यंतरी! तूं कुछ भी कर ले। भयंकर परीषह तो क्या, प्राणान्त कर दे तो भी मैं अपनी साधना और श्रद्धा में अडिग रहूंगा।

उस व्यंतरी ने क्रुद्ध होकर आचार्यश्री को आकाश में उछाला और नीचे गिरते समय तीक्ष्ण भाले में पिरो लिया।

प्राणलेवा उपसर्ग करती हुई व्यंतरी बोली-देख आचार्य! अभी भी वक्त है। मान जा अन्यथा तेरे हठाग्रह का परिणाम बहुत बुरा होगा। आचार्यश्री के शरीर से रूधिर रिसने लगा। रक्त-बिंदुओं को नदी में गिरते देखकर अर्णिकापुत्राचार्य की पीड़ा का पार न रहा-ओह! इन रक्त की बूंदों से पानी के कितने कितने असंख्य जीवों की विराधना हो रही है। अरे ! मैं अशरीरी होता तो किसी भी जीव को पीड़ा न होती। वास्तव में सिद्ध भगवंतों की महिमा कितनी महान् ! सिद्ध पद पाने के पश्चात् विराधना, अजयणा, कर्मबंधन व पाप स्थान का कोई सेवन नहीं। मैं भी सिद्ध होता तो शरीर नहीं होता। शरीर के अभाव में न तो रक्त होता, न विराधना होती। करूणा की इन भव्य भावनाओं में भीगते भीगते आचार्य केवली बन गये और उसी समय आयुष्य पूर्ण कर मोक्षगामी बन गये।

पुष्पचूला ने केवली पर्याय में अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध दिया और शेष चार घाती कर्मों का क्षय कर अक्षय पद की उपभोक्ता बनी।

श्रुत संरक्षक

श्री जैन श्वेताम्बर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादावाडी संघ, इचलकरंजी
श्री जिनहरि विहार ट्रस्ट, पालीताना
पूजनीया प्रवर्तिनी श्री प्रमोदश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की प्रेरणा से श्री जिनकुशलसूरि सेवाश्रम संस्थान, कुशल वाटिका, बाडमेर
श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी ट्रस्ट, बसवनगुडी, बैंगलोर
पू. खान्देश शिरोमणि गुरुवर्या श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री मुनिसुव्रतस्वामी जैन देरासर एवं दादावाडी ट्रस्ट, कान्ति मणि विहार, आडगांव–नाशिक
श्री भूरचंदजी प्रकाशचंदजी चंपालालजी जितेन्द्रकुमारजी मोहित आशिष दिव्यांश धारीवाल, चौहटन–बाडमेर
मातुश्री मोहिनीदेवी ध.प. सूरजमलजी छाजेड की प्रेरणा से सौ. कांतादेवी जगदीशचंदजी, खुशबू नितेशकुमार, सौरभ छाजेड परिवार, हरसाणी–इचलकरंजी
मातुश्री पिस्तादेवी के आशीर्वाद से श्री ऋषभलालजी मांगीलालजी केसरीमलजी अमृतलाल अभयकुमार बेटा पोता छगनलालजी छाजेड, सिवाना–इचलकरंजी–पाली
मातुश्री ढ़ेलीदेवी ध.प. श्री पीरचंदजी वडेरा की स्मृति में श्री बाबूलालजी किशनलालजी चम्पालालजी भूरचंदजी गौतमचंदजी वडेरा परिवार, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
श्री आशारामजी वख्तावरमलजी खेमचंदजी लालचंदजी सुरेशकुमारजी सचिनकुमारजी मयूरकुमारजी नाहटा, सिवाना–इचलकरंजी–नागपुर
स्व. मातुश्री परमेश्वरीदेवी स्व. पिताश्री सुल्तानमलजी बोहरा की पावन स्मृति में घेवरचंदजी ओमप्रकाशजी अशोककुमारजी सुरेशकुमारजी दिनेशकुमारजी रतनपुरा बोहरा भियांड वाले, बाडमेर–इचलकरंजी
मातुश्री सुकीदेवी देरामचंदजी की प्रेरणा से दीपचंदजी नेमीचंदजी शांतिलालजी मगराजजी रमेशकुमारजी भंसाली, समदडी–इचलकरंजी–सूरत
मातुश्री श्रीमती देवी ध.प. श्री रिखबदासजी छाजेड की प्रेरणा से अशोककुमार परमेश्वरीदेवी पवनकुमार रितिककुमार दर्शनकुमार छाजेड बाडमेर–इचलकरंजी
श्रीमती भंवरीदेवी नेमीचंदजी की प्रेरणा से श्री जगदीशचंदजी संपतराजजी रमेशचंदजी जसराजजी बाबुलालजी छाजेड, बाडमेर–इचलकरंजी
मातुश्री स्व. मोहनीदेवी ध.प. स्व. श्री राणामलजी मेहता की स्मृति में बाबुलालजी भूरचंदजी सम्पतराजजी मांगीलाल सवाई अंकित मेहता, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
श्रीमती पारसीबाई रतनचंदजी सौ. किरणबाई प्रकाशचंदजी सचिन जिनेश समृद्ध चौपडा बिलाडा वाले, हैदराबाद
संघवी श्री माणकचंदजी सौ. सुशीलादेवी पुत्र अरूणकुमार सौ. कवितादेवी विवेककुमार सौ. डिम्पलदेवी पुत्र पौत्र श्री वरदीचंदजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी–अहमदाबाद
श्री देवीचंदजी रतनलालजी छोगालालजी नरेशकुमार मुकेशकुमार कपिलकुमार विकासकुमार वडेरा, बाडमेर–इचलकरंजी
मातुश्री स्व. बबरीदेवी ध.प.केसरीमलजी की पुण्य स्मृति में मातुश्री ढ़ेलीदेवी ध.प. स्व. शिवलालचंदजी की प्रेरणा से पुत्र बाबुलालजी ओमप्रकाशजी पारसमलजी छाजेड {कवास वाले} बाडमेर–इचलकरंजी
श्री भंवरलालजी सौ. सुआदेवी पुत्र ओमप्रकाश सौ. सुमित्रादेवी अशोककुमार सौ. संगीतादेवी बेटा पोता श्री विरधीचंदजी छाजेड, बाडमेर–मुंबई
स्व. श्रीमती पानीबाई लक्ष्मीचंदजी स्व. श्रीमती पवनबाई मांगीलालजी श्रीमती डाली हेमन्तजी श्रीमती अर्चना संदीपजी परमार, कोयम्बतूर–बाली
सांचोर निवासी बोहरा पारसमलजी हंजारीमलजी पुत्र श्री बाबुलालजी घेवरचंदजी मोतीलालजी, विनस मेटल कॉर्पो. मुंबई
स्व. जावंतराजजी हस्तीमलजी मांगीलालजी नरसिंहमलजी गौतम विक्रम हिदान बोहरा परिवार केरिया वाले, सांचोर– मुंबई

मातुश्री ढेलीदेवी की स्मृति में शा. संपतराजजी लूणकरणजी समकित हिमांशु बेटा पोता माणकमलजी हीरालालजी रामजियांणी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
भाई स्व. श्री हेमराजजी घेवरचंदजी, स्व. श्रीमती शांतिदेवी धर्मपत्नी श्री घमडीरामजी की स्मृति में मोतीलालजी पारसमलजी बेटा पोता प्रतापमलजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी– बैंगलोर
श्री मीठालालजी सौ. पुष्पादेवी पुत्र महावीरकुमार अरूणकुमार पौत्र ध्रुव हर्ष चिराग लूंकड, गढसिवाना–इचलकरंजी
पूजनीया साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया साध्वी श्री श्रद्धांजनाश्रीजी म. [बिबी म.] की पावन प्रेरणा से उनके चातुर्मास के उपलक्ष्य में श्री जैन संघ, गुलाबनगर, जोधपुर राज.
श्री लहरचंद भाई शाह सौ. श्रीमती मधुबेन शाह मूल कच्छ वर्तमान उज्जैन निवासी श्री लहरचंदभाई के 75वर्ष पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में, गदग
शा. पन्नालालजी गौतमचंदजी रतनचंदजी पारसचंदजी पुखराजजी धर्मचंदजी अशोककुमारजी कवाड परिवार फलोदी–तिरूपात्तूर
श्री हिन्दुमलजी मटकादेवी पुत्र पुखराज सुरेशकुमार भरतकुमार नरेशकुमार बेटा पोता हमीरमलजी लूणिया धोरीमन्ना–चेन्नई
शा. सुगनचंदजी राजेशकुमारजी संजय आनन्द अभिषेक अरिहंत बरडिया, ब्रह्मसर छबडा– चेन्नई
पू. माताजी म. श्री रतनमालाश्रीजी म. के आशीर्वाद से पिताजी श्री भंवरलालजी की पुण्य स्मृति में श्रीमती मोहिनी देवी पुत्र ललितकुमार राजकुमार कैलाशकुमार गौतमचंद संकलेचा रासोणी परिवार, पादरू–चेन्नई–हैदराबाद
श्रीमती सुआदेवी पूनमचंदजी भवानीदेवी पुखराजजी राजेश सुरेश दिनेश छाजेड, पादरू–मुंबई–चेन्नई–दिल्ली
शा. मुकनचंदजी तीजोदेवी, लूणचंद नरेन्द्रकुमार–स्नेहादेवी लक्ष्यकुमारी दिव्याकुमारी कवाड परिवार, पादरू–चेन्नई
श्रीमती बदामीदेवी नेमीचंदजी, श्रीमती चन्द्रादेवी–राजेशकुमारजी सामिया रसिक सैहल कटारिया परिवार, पादरू–चेन्नई
श्रीमती मथरादेवी हरखचंदजी गुलेच्छा की पुण्य स्मृति में श्रीमती पुष्पादेवी–मोहनलालजी अशोक भरत मुकेश गोलेच्छा परिवार, पादरू–विजयवाडा
श्री शीतलनाथ भगवान एवं दादा श्री जिनकुशलसूरि ट्रस्ट, पादरू राज.
श्री मदनलालजी राजेन्द्रकुमारजी विक्रमकुमार महेन्द्रकुमार मुकेश नरेश बेटा श्री रिकबचंदजी दांतेवाडिया, एस. आर. एस., मांडवला–चेन्नई
शा. महेन्द्रकुमारजी राजेश–श्वेता, विनय–महिमा, ईशांत व जिनय कोठारी परिवार, फलोदी–चेन्नई
शा. बाबुलालजी सौ. हंसाबेन, राकेश–ममता, तीर्थस तीर्था पुत्र पौत्र मणिलालजी डोसी, मंडार–चेन्नई
संघवी अशोककुमारजी विनोदकुमारजी महावीरकुमारजी किरणकुमार श्रीपालकुमार विमलकुमार महिपाल रियांशवीर गोलेच्छा परिवार, जीवाणा–चेन्नई
श्री चन्द्रप्रभु जैन श्वेताम्बर मंदिर, शूले, चेन्नई
श्री संभवनाथ श्वेताम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, वडपलनी, चेन्नई
शा. वीरेन्द्रमलजी–सौ. शांतादेवी, आशिष–दीपा, दर्शन बेटा पोता पारसमलजी सायरकंवर कोचर मेहता परिवार, जैतारण–चेन्नई
शा. जवरीलाल पदमकुमार प्रवीणकुमार अनिकेत सिद्धार्थ टाटिया परिवार, टाटिया फाउण्डेशन, चेन्नई
श्री तमिलनाडु खरतरगच्छ संघ, चेन्नई
श्रीमती स्व. रूपीदेवी तोगमलजी की पुण्य स्मृति में श्रीमती कमलादेवी भीखचंदजी एवं श्रीमती दुर्गादेवी स्व. बाबुलालजी सागरोणी गोलेच्छा परिवार पादरू–हैदराबाद
प. पू. कुलदीपिका साध्वीवर्या श्री विनयांजनाश्रीजी म.सा. के द्विवर्षीय वर्षीतप के पूर्णाहुति एवं प. पू. प्रियमंत्रांजनाश्रीजी म.सा. की बडी दीक्षा निमित्त स्व. मदनचंदजी बरडिया, चूले चेन्नई
शा. सांकलचंदजी जगदीशकुमार अशोककुमार अमितकुमार सम्यक् बेटा पोता श्री बादरमलजी रासोणी संकलेचा, पादरू– हैदराबाद
पूजनीया पार्श्वमणि तीर्थ प्रेरिका गुरुवर्या श्री सुलोचनाश्रीजी म.सा. तपोरत्ना श्री सुलक्षणाश्रीजी म.सा. की सुशिष्या पू. साध्वी श्री प्रियस्वर्णांजनाश्रीजी म.सा. आदि ठाणा 4 [चातुर्मास 2015] की प्रेरणा से श्री कुंथुनाथ जैन श्वेताम्बर मू.पू. संघ, सिन्धनूर [कर्णाटक]
माताजी श्रीमती खम्मादेवी मिश्रीमलजी की प्रेरणा से शा. भूरचंदजी बाबुलालजी नेमीचंदजी गुलाबचंदजी जीरावला परिवार, जोधपुर–मुंबई–चेन्नई

पू. महत्तरा साध्वी श्री चंपाश्रीजी म., पू. समता साधिका श्री जितेन्द्रश्रीजी म. की शिष्या पू. धवल यशस्वी श्री विमलप्रभाश्रीजी म. की आज्ञांकिता पू. साध्वी श्री विश्वरत्नाश्रीजी म. आदि की प्रेरणा से सन् 2015 के चातुर्मास के उपलक्ष्य में श्री शांति वल्लभ लुम्बिनी जैन संघ, चेन्नई के ज्ञान खाते से

पू. महत्तरा साध्वी श्री चंपाश्रीजी म., पू. समता साधिका श्री जितेन्द्रश्रीजी म. की शिष्या पू. धवल यशस्वी श्री विमलप्रभाश्रीजी म. की पावन प्रेरणा से सन् 2015 के चातुर्मास के उपलक्ष्य में श्री जिनदत्तसूरि जैन मंडल एवं श्री धर्मनाथ जैन मंदिर के ज्ञान खाते से

प. पू. पार्श्वमणि तीर्थ प्रेरिका गणिनी श्री सुलोचनाश्रीजी म. पू. तपोरत्ना श्री सुलक्षणाश्रीजी म. की पावन प्रेरणा से श्री जैन श्वे. पार्श्वमणि तीर्थ पेद्दतुम्बलम्, आदोनी

श्री पार्श्व कुशल जैन सेवा ट्रस्ट, तिरूपुर

पू. बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी डॉ. श्री शासनप्रभाश्रीजी म. के शासन प्रभावक चातुर्मास सन् 2015 के उपलक्ष्य में उनकी प्रेरणा से श्री जैन श्वेताम्बर संघ, धमतरी छ.ग.

पू. बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी डॉ. श्री शासनप्रभाश्रीजी म. के शासन प्रभावक चातुर्मास सन् 2015 के उपलक्ष्य में उनकी प्रेरणा से श्री शांतिनाथ भगवान् जैन मंदिर ट्रस्ट, महासमुन्द छ.ग.

पू. बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी डॉ. श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से श्रीमती पानीबाई आसकरणजी भंसाली की पुण्य स्मृति में श्री तिलोकचंदजी पौत्र ललितकुमार कमलचंद सुनीलकुमार सुरेशकुमार भंसाली परिवार, रायपुर छ.ग.

स्व. श्रीमती हेमलताबाई गुलेच्छा की स्मृति में श्री संजयजी गुलेच्छा, रायपुर छ.ग.

श्रुत समाराधक

पू. मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म. की दीक्षा के उपलक्ष्य में शा. बाबुलालजी सौ. कमलादेवी पुत्र रमेशकुमार पौत्र मंथनकुमार लूंकड, मोकलसर–इचलकरंजी

पू. खान्देश शिरोमणि गुरुवर्या श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री जैन श्वे. मू.पू. संघ जलगांव की श्राविकाओं की ओर से

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ, हैदराबाद

श्रीमती मोहिनीदेवी भंवरलालजी मांगीलालजी कुशलकुमार संखलेचा, फलोदी–अक्कलकुआं

श्रीमती शकुन्तलादेवी धर्मपत्नी स्व. श्री उगमराजजी कमलेश अनिल गुगलिया, पाली–देवाली

श्री प्रकाशचंदजी पंकजकुमारजी मनिषकुमारजी महावीरजी भंडारी, सोजतरोड–इचलकरंजी

श्री मांगीलालजी ललितकुमार बेटा पोता खीमराजजी भीखचंदजी छाजेड, रामसर–इचलकरंजी

श्री संपतराजजी सौ. चंचलदेवी पुत्र अभिषेककुमार रवीन्द्रकुमार बाबेल, बिजयनगर

मातुश्री मोहिनीदेवी की प्रेरणा से श्री ओमप्रकाशजी रमेशकुमारजी सुनिलकुमारजी बैदमुथा, कवास वाले–इचलकरंजी

श्रीमती पुतलाबाई इन्द्रभानजी पुत्र शा. पृथ्वीराजजी पौत्र चेतनकुमारजी बोरा, नाशिक रोड

शा. पुखराजजी दिनेशकुमार उगमराज पुत्र पौत्र उदयचंदजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी

श्रीमती शांताबेन हरखचंदजी बोथरा, सांचोर–मुंबई

पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की प्रेरणा से स्थापित श्री मणिधारी महिला मंडल, इचलकरंजी

श्री राजस्थानी जैन श्वे. मूर्तिपूजक संघ, इचलकरंजी

श्रीमती शांतिदेवी जसराजजी बालड, असाडा–इचलकरंजी

पूजनीया साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया साध्वी श्री श्रद्धांजनाश्रीजी म. {बिबी म.} की पावन प्रेरणा से उनकी 28वीं दीक्षा तिथि के उपलक्ष्य में एक गुरुभक्त

मातुश्री धापुदेवी चंदनमलजी पुत्र खूबचंदजी की स्मृति में शा. खुशीरामजी बोहरा हाला वाले, फालना–तिरूपुर

श्री माणकचंदजी तिलोकचंदजी प्रवीणचंदजी पूनमचंदजी झाबक, फलोदी–कोयम्बतूर

श्री प्रसन्नचंदजी भरत गर्व गोलेच्छा, भरत एण्ड कंपनी, फलोदी–चेन्नई
शा. बंशीलालजी प्रकाशचंदजी राजेन्द्रकुमारजी गौतमचंदजी कटारिया, बिलाडा–रेनिगुण्टा
शा. सुरेशचंदजी दिनेशकुमारजी महावीरचंद गौतम डोशी परिवार, ब्यावर–चेन्नई
शा. थानमलजी तिलोकचंदजी अशोककुमारजी बेटा पोता शंकरलालजी जावाल वाले, चेन्नई
श्री नीरजजी जैन धर्म पत्नी श्रीमती सौ. नीतादेवी पुत्र गवीश पुत्री भाविनी जैन नई दिल्ली
पू. मुनि श्री मलयप्रभसागरजी म. एवं पू. साध्वी श्री प्रियमुद्रांजनाश्रीजी म. की दीक्षा के उपलक्ष्य में श्री बस्तीचंदजी महिपालचंदजी कानूगो, फलोदी–चेन्नई
स्व. जम्मूदेवी ताराचंदजी पुत्र प्रकाशचंदजी अशोककुमारजी संकलेचा, समदडी–जोधपुर
श्रीमती शकुन्तलादेवी धर्मपत्नी स्व. श्री उगमराजजी कमलेश अनिल गुगलिया पाली टेवाली राज.
पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की शिष्या पूजनीया डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से मातुश्री रत्नाबाई की पुण्यस्मृति में पिताश्री उत्तमचंदजी सुपुत्र विनयकुमार सुपौत्र मौलिककुमार भंसाली, रायपुर–छ.ग.
पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की शिष्या पूजनीया डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से मातुश्री जीयाबाई मोतीलालजी सुपुत्र डॉ. धर्मचंदजी मधुबेन रामपुरिया परिवार, रायपुर–छ.ग.
स्व. पिताश्री फूलचंदजी चौपडा की स्मृति में मातुश्री कस्तुरीदेवी चोपडा की जीवराशि क्षमापना के उपलक्ष्य में नरेन्द्रकुमार डोंगरमल चोपडा, दुर्ग–छ.ग.
पू. खान्देश शिरोमणि महत्तरा श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म. के 75वें जन्म दिवस एवं 65वें दीक्षा दिवस के उपलक्ष में उनकी शिष्या पूज्या साध्वी श्री विरागज्योतिश्रीजी म. पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री महावीर स्वामी जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्राविकाऐं, फीलखाना हैदराबाद की ओर से
पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की सुशिष्या पू. डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. द्वारा संस्थापित श्री पार्श्व कुशल प्रतिक्रमण ग्रुप राजनांदगांव के ज्ञान खाते से
पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की सुशिष्या पू. डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से स्व. श्री भंवरलालजी कोचर के आत्मश्रेयार्थ धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रादेवी कोचर की प्रेरणा से सुपुत्र महेन्द्रकुमार तरूणकुमार कोचर परिवार, रायपुर
पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की सुशिष्या पू. डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से पुखराजजी छोटाबाई कोठारी की स्मृति में पुत्र गौतमचंदजी मीनादेवी कोठारी परिवार, रायपुर

श्रुत सहयोगी

श्री मदनलालजी भंवरलालजी बोथरा, बाडमेर–इचलकरंजी
श्री बाबुलालजी मुलतानमलजी मालू, बाडमेर–इचलकरंजी
श्रीमती शांतिप्रभा रंगरूपमलजी लोढा, चेन्नई
श्री दिनेशकुमारजी बाबूलालजी मालू, हरसाणी–इचलकरंजी
श्री फूलचंदजी टेकचंदजी छाजेड, डुठारिया–पूना
श्री पारसमलजी सूरजमलजी छाजेड, डुठारिया–पूना
श्री फरसराजजी महावीरचंदजी सिंघवी, बाडमेर–इचलकरंजी
श्री विजयराजजी महेन्द्रजी कटारिया, बिलाडा–मैसूर
श्री मुकेशकुमारजी मोहनलालजी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी
श्री अशोककुमारजी भंवरलालजी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी
श्री दिपककुमार मितकुमार कुंकु चोपडा, पचपदरा